सच्चे देव का स्वरूप

प्रस्तुतकर्त्री

आर्यिका श्री 105 विज्ञानमती माताजी

प्रकाशक

धर्मोदय साहित्य प्रकाशन

सागर (म. प्र.)

- **कृति** : सच्चे देव का स्वरूप
- **प्रस्तुतकर्त्री** : आर्यिका श्री 105 विज्ञानमती माताजी
- **संस्करण** : द्वितीय, 28 मार्च 2010 (महावीर जयंती)
- **आवृत्ति** : 2200
- **लागत मूल्य** : 10/-
- **प्राप्ति स्थान** : **धर्मोदय साहित्य प्रकाशन**
  सागर (म. प्र.)
  094249-51771
  dharmodayat@gmail.com
- **मुद्रक** : विकास आफसेट, भोपाल

उद्‌भावना

राजस्थान की भिण्डर नगरी के संस्कारनिष्ठ परिवार में श्रेष्ठी बालूलाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती कमलादेवी की कोख में जन्मी लीला-वर्तमान में पूज्य आर्यिकाश्री विज्ञानमती माताजी गाँव के खुले वातावरण में पली और पढ़ लिखकर योग्य हुईं। मिट्टी की सौंधी सुगन्ध और खेतों में लहलहाती फसलों की मस्ती का बड़े नजदीक से आपने अनुभव किया है। शायद इसीलिए आप आम जनता की भावनाओं से, उनके रहन-सहन से, आचरण से परिचित रहीं; उनकी खुशियों में खुश हुईं और उनकी वेदना में रोईं। उसी स्नेह और दर्द को लेकर आपकी अधिकांश कृतियों का सृजन हुआ है। आपकी लेखनी जनमानस के सुख-दुःख रूप जीवंत संस्पर्श से सदैव अभिभूत रही है। दुनिया में पैसा तो सभी कमा सकते हैं लेकिन जनमानस का स्नेह अर्जन एक साहित्यकार ही कर सकता है, फिर वह यदि संत आचरण वाला है, तो और भी सोने में सुगन्ध जैसा है।

इसी वेदना व स्नेह की शृंखला में पू. आर्यिकाश्री की लेखनी से **'सच्चे देव का स्वरूप'** कृति की उद्‌भावना हुई है। लोक में कहा जाता है कि हर कार्य के पीछे कुछ-न-कुछ निमित्त होता ही है। ठीक इसी प्रकार इस कृति के पीछे भी सशक्त निमित्त दिगम्बर मुनिराज हैं। जून २००८ के ग्रीष्मकालीन प्रवास में पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के दर्शन हेतु हम सभी आचार्य संघ के चरणों में सिलवानी पहुँचे। आचार्यश्री के दर्शनोपरान्त मुनिवृन्द के दर्शन-वन्दन कर रहे थे उसी समय मुनिश्री ने पू. आर्यिकाश्री से कहा- ''माताजी! आपकी लेखनी से सतत सत्साहित्य का सृजन होता रहता है। आप एक कृति 'सच्चे देव के स्वरूप' पर लिखें ताकि लोग मिथ्यात्व के सेवन से बच सकें और अपने संसार-भ्रमण को समाप्त करने का सही-सही पुरुषार्थ कर सकें।

सच्चे-देव का स्वरूप तर्क, युक्ति, आगम से समझकर मिथ्यात्व के जघन्य पाप से बच सकें। पूज्य मुनिश्री की भावना को ध्यान में रखते हुए पू. आर्यिकाश्री ने ३१ प्रश्नों के माध्यम से सच्चे देव के स्वरूप के संदर्भ में वर्तमान में फैली सारी भ्रान्तियों को निर्मूल किया है। जो भी भव्य श्रद्धालु एकाग्रता से इस कृति का स्वाध्याय करेगा तो निश्चित ही उसके अन्दर का अनादिकालीन मिथ्यात्व छूट सकता है। वह सच्चे देव की समीचीन आराधना करके अपने विशाल संसार-सागर को चुल्लूभर कर सकता है, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं पाठकों से अपेक्षा करती हूँ कि वे पुस्तक को पढ़कर औरों को भी इसे पढ़ने के लिए प्रेरित करेंगे ताकि आपके साथ-साथ वे भी मिथ्यात्व रूपी अंधकार से अपने आपको बचाकर अपनी श्रद्धा को निर्मल बना सकें।

अंत में, वीतराग देव के चरणों में यही प्रार्थना है कि हे भगवन्! आपके यथार्थ स्वरूप को समझकर संसार के सभी प्राणी मिथ्यामार्ग से हटकर सन्मार्ग पर चलें और अपनी आत्मा का कल्याण करें।

जिनेन्द्रदेव के चरणारविन्द में नंत-नंतशः नमोऽस्तु....

– आर्यिका आदित्यमती

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

卐 भूमिका 卐

सिद्ध के समान शुद्ध स्वभाव वाला यह जीव अनादिकाल से चारों गतियों में भटक रहा है। संसार में भटकते हुए इस जीव ने प्रत्येक भव में मात्र दुःख ही भोगे हैं। कहीं-कहीं कभी-कभी इसने इन्द्रियों से उत्पन्न सुख में ही सन्तुष्ट होकर उसी की आराधना करना प्रारम्भ कर दिया जिसके निमित्त से इसको सुखाभास रूप सुख प्राप्त हुआ। वास्तव में वह सुखाभास नहीं होता तो अल्पस्थायी क्यों होता, क्षणिक क्यों होता, पराश्रित क्यों होता, पुनः पुनः प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न करने वाला क्यों होता तथा इस सुख के प्राप्त हो जाने पर भी संसार के परिभ्रमण, जन्म-मरण आदि का काम ही क्या था ? हमें बार-बार जन्म-मरण करना पड़ रहा है, हम बार-बार संसार में जन्म ले रहे हैं इसका अर्थ ही यह है कि हमें आज तक वास्तविक सुख प्राप्त हुआ ही नहीं। वास्तविक सुखप्राप्ति का कारण रत्नत्रय की पूर्णता है। रत्नत्रय का प्रारम्भ सम्यग्दर्शन से होता है अथवा यूँ कह दो कि सम्यग्दर्शन शाश्वत सुख की प्राप्ति का आधार है। सम्यग्दर्शन रत्न है जिसके बिना ज्ञान एवं चारित्र सम्यक्पने (रत्नपने) को प्राप्त नहीं होते। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का बाह्य कारण सच्चे देव के दर्शन, आराधना, श्रद्धान, आस्था हैं। इसके विपरीत जिसके उदय से हम संसार में भटक रहे हैं, उसका कारण मिथ्यादर्शन है। मिथ्यात्व का कारण सच्चे देव को नहीं समझना अथवा सरागी देवों की आराधना करना है।

इस पंचमकाल में बहुतायत से सरागी देवों का ही बोलबाला है। पग-पग पर सरागी देवों की प्रतिकृतियाँ रखी मिलती हैं। हमारे अड़ोस-पड़ोस, मित्र, रिश्तेदार आदि भी अधिकांशतः सरागी देवों के आराधक हैं, कुछ लोग सच्चे देव की आराधना भी करते हैं लेकिन वे भी समय आने पर सरागी देवों की शरण में चले जाते हैं। कुछ लोग सच्चे देव को भी पूजते हैं और सरागी देवों

की भी आराधना करते रहते हैं। कुछ लोग सच्चे देव के स्वरूप को नहीं समझने के कारण ख्याति, पूजा, लाभ, पुत्रप्राप्ति, धनवृद्धि, शारीरिक स्वास्थ्य आदि की आकांक्षा लेकर आराधना करते हैं, इसलिए उनको भी आराधना का समीचीन फल नहीं मिल पाता है। सरागी देवों की आराधना से जिसप्रकार जीव संसार में ही भ्रमण करता रहता है उसी प्रकार बिना लक्ष्य के अथवा तात्कालिक इन्द्रिय सुख का लक्ष्य बनाकर सच्चे देव की आराधना करने पर भी संसार-भ्रमण ही होता है। कई लोग दृढ़तापूर्वक सच्चे देव के चरणों में डटे भी रहते हैं लेकिन आसपास के लोग अर्थात् रिश्तेदार, मित्र, पुत्र, पौत्रादि उनको सरागी देवों के स्थानों पर जाने के लिए मजबूर कर देते हैं अथवा वे स्वयं मिथ्यात्व के तीव्र उदय से सम्यक् आस्था से च्युत हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति ने सच्चे देव की आस्था भी की, आराधना भी की लेकिन किसी के कहने से या कुल-परम्परा के संस्कार से या किसी की देखा-देखी की इसलिए विपरीत परिस्थिति आने पर वह सही मार्ग से च्युत हो गया। यदि उसकी मान्यता तर्क-युक्ति रूप कसौटी पर कसे हुए सोने के समान होती तो कितने भी, कैसे भी निमित्त मिलते वह श्रद्धा से च्युत नहीं होता। इस पुस्तक में सच्चे देव को तर्क, युक्ति से समझने के लिए इकतीस प्रश्न उठाकर उनके उत्तर दिये गये हैं। यदि कहीं कुछ गलती हो तो विद्वान्गण सुधार कर पढ़ें, सच्चे देव को समझकर अपना कल्याण करें। इति शुभम्।

- आर्यिका विज्ञानमती

ॐ

卐 मंगलाचरण 卐

अर्हन्त सिद्ध भगवंत देव आचार्य आदि परमेष्ठी को।
वंदन कर माँ शारद ! कहती आप्त देव के लक्षण को॥
विवेक विद्या ज्ञान सिन्धु को, नमन करूँ त्रय योगों से।
सत्य देव की श्रद्धा करके, बच जाऊँ भव रोगों से॥

संसार का प्रत्येक संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव चाहता है कि उसे सच्चे देव के दर्शन हों ताकि वह भी उनके प्रति दृढ़ आस्था रखकर सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर ले, जिससे उसका संसार-सागर सूख कर मात्र चुल्लू भर रह जाय। एक बार भी सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाने पर इस जीव का संसार अधिक-से-अधिक कुछ कम अर्द्ध-पुद्गल परावर्तन मात्र रह जाता है। अर्थात् यह जीव नियम से कुछ ही भवों में मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

आस्थाशील प्राणी सच्चे देव के दर्शन करता भी है लेकिन उनका सही-सही स्वरूप नहीं समझने के कारण वह कभी-कभी कुदेव को अथवा जो देव नहीं है अर्थात् जिनमें सच्चे देव के गुण नहीं हैं, उनको सच्चा देव समझकर पूजता है तो कभी सच्चे देव को भी सच्चा देव नहीं समझकर ''हमारे कुल में ये देव पूजे जाते हैं'' अर्थात् मेरे दादा, परदादा, पिता, काका आदि इन्हीं भगवान् को पूजते आ रहे हैं इसलिए मुझे भी इन्हीं भगवान् को पूजना चाहिए, ऐसा सोचकर जिनेन्द्रदेव को पूजता रहता है, फिर भी उसे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि वह जिनेन्द्रदेव को पूजकर भी उन्हें सच्चादेव मानकर नहीं पूजता। यही कारण है कि आज तक इतनी पूजा-आराधना करने पर भी, प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने पर भी, उनकी भक्ति करने पर भी भक्त को भगवान् के दर्शन नहीं हो पाये, भगवान् के दर्शन करने पर भी उसका सही फल नहीं मिल पाया। उसका संसार-सागर सूख नहीं पाया।

वास्तव में व्यक्ति की आँखों पर जिस रंग का चश्मा लगा रहता है उसको सभी चीजें उसी रंग की दिखती हैं। जिस प्रकार पीले चश्मे वाले को सफेद वस्तु भी पीली ही दिखती है, जब तक वह अपना चश्मा नहीं निकालता उसे वस्तु का सही-सही ज्ञान नहीं हो सकता है; उसी प्रकार जब तक यह जीव अज्ञान का चश्मा नहीं हटाता, पक्ष व्यामोहरूप ''हमारा कुल परम्परागत धर्म ही सच्चा है, जिसे हम मानते हैं वे सच्चे हैं'' इस प्रकार की रूढ़ धारणा नहीं छोड़ता तब तक उसे सच्चे धर्म अथवा सच्चे देव का स्वरूप समझ में नहीं आ सकता। जब तक सच्चे देव का स्वरूप समझ में नहीं आता उनके दर्शन नहीं हो सकते हैं, दर्शन के बिना हमारा कल्याण नहीं हो सकता। यदि हमें अपना कल्याण करना है, सच्चे सुख को प्राप्त करना है तो सच्चे देव को रूढ़ि से ही नहीं अपितु सच्चे देव को सच्चा देव समझकर, श्रद्धा करके पूजना होगा तभी हमें सच्चे देव के दर्शन हो सकते हैं। अन्यथा भगवान् के सही दर्शन भी नहीं हो सकते, सम्यग्दर्शन और आत्मकल्याण की बात तो बहुत दूर है। हमने स्वर्गों में असंख्यात वर्षों तक जिनेन्द्रदेव को कुलदेवता समझकर पूजा, उनकी आराधना की फिर भी वहाँ से च्युत होकर हम एकेन्द्रिय-स्थावरों में उत्पन्न हुए या होते हैं अत: सर्वप्रथम मैं यहाँ पर बहुत संक्षेप में सच्चे देव, जिनेन्द्रदेव का स्वरूप युक्ति, आगम एवं तर्क पूर्वक बताना चाहती हूँ जिसको समझकर हम सब सच्चे देव की आराधना करके अपना कल्याण कर सकें।

(१) प्रश्न - सच्चे देव किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो वीतराग, सर्वज्ञ तथा हितोपदेशी होते हैं, वे सच्चे देव हैं। अथवा जिन्होंने इन्द्रियों और कषायों को जीत लिया है, वे जिनेन्द्र देव हैं, वे ही सच्चे देव हैं।[१]

वीतराग - जिनका राग बीत चुका है, नष्ट हो चुका है, वे वीतराग हैं। जिनका राग नष्ट हो जाता है उनके द्वेष, मोह, प्रेम, ममत्व, स्नेह आदि परिणाम तो रह ही नहीं सकते हैं।

---

१. जो हर्ष विषादादि सभी तरह के मानसिक विकारी भावों से सर्वथा दूर हों, वे ही जिन हैं।

जिसके द्वेष नहीं है उसके राग रह सकता है, रहता है लेकिन जिसके राग नष्ट हो गया है उसके द्वेष तो नियम से नष्ट हो ही जाता है क्योंकि पहले द्वेष का नाश होता है, बाद में राग का। जैसे-संसार में किसी व्यक्ति का किसी से द्वेष नहीं है, किसी से लड़ाई नहीं है फिर भी उसका कई लोगों से राग-प्रेम रहता ही है लेकिन जिसका किसी से भी प्रेम नहीं है उसकी किसी से लड़ाई हो, मन-मुटाव हो, ऐसा नहीं देखा जाता है।

सर्वज्ञ - जो तीन लोक, तीन काल की सर्व वस्तुओं को एक साथ जानते हैं, वे सर्वज्ञ हैं।

हितोपदेशी - जो एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त चाहे वे पापी हों या पुण्यात्मा, धर्मात्मा हों या अधर्मी, धनाढ्य हों या निर्धन, चोर हों या साहूकार, प्रतिष्ठित हों या अप्रतिष्ठित, ज्ञानी हों या अज्ञानी सभी जीवों के हितार्थ उपदेश देने वाले हैं, वे हितोपदेशी कहलाते हैं।

ये तीन गुण जिनमें पाये जाते हैं, वे सच्चे देव कहलाते हैं।

इन्द्रियाँ पाँच हैं- स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा कर्ण। मन को भी कथंचित् इन्द्रिय माना गया है।

स्पर्शन इन्द्रिय - जिससे स्पर्श करके, छू करके पदार्थों का ज्ञान होता है, वह स्पर्शन इन्द्रिय है। यह इन्द्रिय हल्का-भारी, रूखा-चिकना, कड़ा-नरम तथा ठण्डे-गरम को जानती है।

रसना इन्द्रिय-जो चखकर पदार्थों का ज्ञान करती है वह रसना इन्द्रिय है। यह इन्द्रिय खट्टे, मीठे, कड़वे, कषायले तथा चटपटे स्वादों को जानती है।

घ्राण इन्द्रिय - जो सूंघ कर पदार्थों को जानती है वह घ्राण इन्द्रिय है। यह इन्द्रिय सुगन्ध तथा दुर्गन्ध को ग्रहण करती है।

चक्षु इन्द्रिय - जो पदार्थों को देखकर जानती है, वह चक्षु इन्द्रिय है। यह इन्द्रिय काला, पीला, सफेद, लाल, हरे आदि विभिन्न रंगों को जानती है।

कर्ण इन्द्रिय - जो सुनकर पदार्थों (शब्दों) को ग्रहण करती है, वह कर्ण इन्द्रिय है। यह इन्द्रिय सारंगी, वीणा, ढोल, गीत, संगीत, पंचम, धैवत

आदि के शब्दों को व ध्वनियों को जानती है।

'स्पर्श' आदि के आठ आदि भेद सामान्य से कहे गये हैं। इनके उत्तरोत्तर अर्थात् एक-दो आदि के मिश्रण से अनेकानेक भेद होते हैं; जैसे हल्कापन भी अनेक प्रकार का होता है, रुई का हल्कापन, थर्माकोल का हल्कापन आदि। **'रस'** में भी नींबू की खटाई, कैंथा की खटाई, अमचूर की खटाई आदि। **'गंध'** में सड़ी वस्तु की दुर्गन्ध, मिट्टी के तेल की बदबू आदि। **'वर्णों'** में एकदम सफेद, गूगला सफेद, दूधिया आदि। शब्दों में भी गधे के स्वर, ऊँट के स्वर, कोयल की कूक आदि अनेक प्रकार के भेद इन भेदों में ही गर्भित हो जाते हैं।

मन - जो पंचेन्द्रियों के द्वारा जाने गये पदार्थों के बारे में हेय-उपादेय, कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझता है, उपदेश को ग्रहण करता है, बुलाने पर आता है, शिक्षा देने पर सीखता है,वह मन है। इसका कोई विषय निश्चित नहीं है।

कषाय - जो आत्मा रूपी खेत को कर्म रूपी फसल प्राप्त करने के लिए उपजाऊ बनाती हैं, कषती हैं, वे कषाय हैं।

कषाय मुख्य रूप से चार हैं – क्रोध, मान, माया और लोभ।

अथवा - जिनके संस्कार [१]अनन्तकाल तक रहें,वे **अनन्तानुबन्धी** क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। जिनके संस्कार छह माह तक रहें, वे **अप्रत्याख्यानावरण** क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। जिनके संस्कार पन्द्रह दिन तक रहें वे **प्रत्याख्यानावरण** क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। जिनके संस्कार एक अन्तर्मुहूर्त्त मात्र रहें वे **संज्वलन** क्रोध मान माया लोभ हैं। ये सोलह तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा नपुंसक वेद, ये नौ मिलकर कषाय २५ भी होती हैं।

इन पंचेन्द्रियों तथा मन के जो विजेता हैं, जिन्होंने उपर्युक्त सभी कषायों को नष्ट कर दिया है अर्थात् इन सबका मूल से ही नाश कर दिया है, वे **जिनेन्द्र देव** हैं।

---

१. उदय का अभाव होते हुए भी कषायों का संस्कार अर्थात् फल देने की शक्ति जितने काल रहे, उसको वासना काल कहते हैं।

पाँच इन्द्रियों का नाश नहीं किया जाता है वरन् उनके विषयों में राग-द्वेष-मोह परिणाम उत्पन्न नहीं होना ही पाँच इन्द्रियों पर विजय कहलाती है।

जिसने पंचेन्द्रियों और मन को जीत लिया है तथा कषायों को नष्ट कर दिया है, वही सर्वज्ञ हो सकता है। जो सर्वज्ञ होता है वही सर्वप्राणियों के हित का उपदेश दे सकता है। जो सर्वज्ञ नहीं है वह वस्तु का सत्य स्वरूप भी नहीं समझ सकता। वस्तु के सही स्वरूप को समझे बिना सर्वजीवों के हित का उपदेश भी नहीं दिया जा सकता है। इसलिए जिनेन्द्र ही सच्चे देव हैं दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं। ऐसे सच्चे देव का श्रद्धान करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

(२) प्रश्न - भगवान् बाहुबली, राम, भरत आदि की तीर्थंकरों के समान नियमित दिव्य देशना नहीं खिरी अथवा मूक केवली (जो बोलते नहीं है) तो कभी किसी को हित का उपदेश देते ही नहीं हैं तो क्या वे सच्चे देव नहीं हैं क्योंकि सच्चे देव तो हितोपदेशी होते हैं?

उत्तर - जो भगवान् उपदेश नहीं देते अथवा जिनकी समवसरण में दिव्यदेशना नहीं खिरती है लेकिन जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश करके वीतरागता को प्राप्त कर लिया है, इन्द्रिय गजों को संयमरूपी अंकुश से वश में कर लिया है, मन रूपी बन्दर की चंचलता को ध्यान रूपी चाबुक दिखा कर स्थिर कर लिया है तथा कषाय रूप ईंधन को शुक्लध्यान रूपी अग्नि में झोंककर मूलत: नष्ट कर दिया है, वे भी सच्चे देव ही होते हैं।

ऊपर जो सच्चे देव का लक्षण कहा गया है वह तीर्थंकर भगवान् को मुख्य करके कहा गया है। प्रत्येक तीर्थंकर कम-से-कम भी वर्ष पृथक्त्व (तीन से नौ वर्ष के बीच की संख्या वर्ष पृथक्त्व में आती है) पर्यन्त तो धर्म का उपदेश देते ही हैं इसलिए उन्हें मुख्य रूप से सच्चे देव कहा है। दूसरी बात तीर्थंकरों से ही धर्म-तीर्थ अर्थात् प्राणियों का हित करने वाले धर्म का प्रारम्भ होता है। तीसरी बात णमोकार मंत्र में तीर्थंकरों के धर्मोपदेश रूप उपकार का स्मरण करने के लिए ही सिद्धों के पहले अरहंतों को नमस्कार किया गया है। इसलिए आचार्य गुरुवर्यों ने तीर्थंकरों को सच्चा देव कहा है। दूसरे अरिहन्त अर्थात् जिनके चार घातिया कर्मों का नाश हो गया है, वे सभी सच्चे देव ही हैं। वे

अपनी दिव्यदेशना से सबके हित का उपदेश नहीं देते हैं फिर भी अपनी समता से, अपनी वीतराग मुद्रा से तो सबको हित का उपदेश देते ही हैं। इसलिए उन्हें भी सच्चा देव मानने में कोई बाधा नहीं है।

कहने का आशय यह है कि सच्चे देव में वीतरागता तथा सर्वज्ञता तो होनी ही चाहिए, वचनों के माध्यम से हितोपदेशिता हो या न हो।

(३) प्रश्न - जिनकी पहिचान स्त्री से होती है, वे सच्चे देव क्यों नहीं हैं?

उत्तर - जिनकी पहिचान स्त्री से होती है, वे सच्चे देव नहीं हो सकते हैं क्योंकि संसारी जीव भी स्त्री, पत्नी रखता है और भगवान् भी यदि पत्नी रखते हैं तो संसारी जीव एवं भगवान् में क्या अन्तर रहा? मेरे अनुमान से उन भगवान् की अपेक्षा तो संसारी जीव किसी अपेक्षा अच्छा ही है जो चौबीसों घण्टे तो पत्नी को अपने पास नहीं रखता, बाँध कर नहीं फिरता, महीनों-महीनों भी उससे दूर रह लेता है। उसे दूर रख लेता है, उसके मर जाने पर और शादी के पहले वर्षों तक उसके बिना निर्विकल्प रहता है जबकि ये (पत्नी वाले भगवान्) दिन-रात पत्नी को अपने पास ही रखते हैं, एक क्षण के लिए भी अलग नहीं करते हैं अथवा उन्होंने स्त्री को अपने आधे शरीर में ही धारण कर लिया है अर्थात् अपने आधे शरीर को स्त्री रूप ही बना लिया है, वे भगवान् कैसे हो सकते हैं?

दूसरी बात, संसार में स्त्री कौन रखता है? जिसके मन में वासना होती है, जो अपनी वासना को नष्ट करने की बात तो बहुत दूर, वश में भी नहीं कर पाता है वह स्त्री रखता है। उसे स्त्री की आवश्यकता पड़ती है। लोक में भी यदि कोई अपनी पत्नी के पीछे ही लगा रहता है, उसके बिना नहीं रह पाता है, चार लोगों के बीच में भी उससे निर्लज्जता का व्यवहार करता है, उससे बातें करता है, अश्लील हँसी-मजाक करता है, उसका स्पर्श आदि करता है तो वह अतिभोगी, निर्लज्ज, आसक्त और कामी कहा जाता है। उसको लोग आदर्श तो बनाते ही नहीं हैं बल्कि उसकी हँसी उड़ाते हैं, उसके साथ रहना भी पसन्द नहीं करते हैं, उसका हास्यास्पद नाम रखते हैं, उस पर फब्तियाँ कसते

हैं; फिर जो चौबीस घण्टे पत्नी को साथ रखता है वह हमारा आदर्श, पूज्य, भगवान्, परमात्मा कैसे हो सकता है, उसको आदर्श मान कर हम अपनी वासनाओं पर कैसे विजय प्राप्त कर सकते हैं, वासनाओं को जीते बिना हमारा कल्याण कैसे हो सकता है?

मैं सोचती हूँ कि पत्नी वाले भगवानों को पूजने की अपेक्षा तो अपने माता-पिता को पूज लेना ही अच्छा है क्योंकि वे उन भगवानों के समान पत्नी को पूरे दिन तो साथ नहीं रखते फिर माता-पिता हमारे भोजन-पानी, वस्त्र, पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था करते हैं, हमें धन उपार्जन करने के योग्य भी बना देते हैं। लोक में माता-पिता की सेवा करने वाले को अच्छा भी माना जाता है लोग उसे आदर्श मानते हैं ..... जबकि ऐसे भगवानों की पूजा करने वाला अज्ञानियों को भले ही अच्छा लग जावे लेकिन बुद्धिमानों के लिए तो वह प्रशंसनीय नहीं हो सकता है। तीसरी बात, स्त्री वाले के वीतरागता तो किसी भी हालत में हो ही नहीं सकती क्योंकि वह तो प्रत्यक्ष में ही रागी दिख रहा है। जो वीतराग नहीं है वह सर्वज्ञ और हितोपदेशी कैसे हो सकता है ? और जो वीतराग और सर्वज्ञ ही नहीं हैं वे सच्चे देव रूप में हमारे आराध्य कैसे हो सकते हैं ? अत: स्त्री साथ रखने वालों को सच्चा देव कभी नहीं मानना चाहिए।

(४) प्रश्न - क्या वस्त्र धारण करने वाले सच्चे देव नहीं हो सकते हैं?

उत्तर - हाँ, वस्त्र वाले भी सच्चे देव नहीं हो सकते हैं। हम सोचें कि वस्त्र कौन पहनता है ? वह पहनता है जिसके भीतर वासना होती है[१] **अथवा** जिसको सर्दी-गर्मी की वेदना होती है **अथवा** जो अपने आपको सुन्दर बनाना चाहता है, वही तो वस्त्र पहनता है। यदि भगवान् में भी वासना है, भगवान् को भी सर्दी-गर्मी लगती है, वे भी सर्दी-गर्मी से बचना चाहते हैं, वे भी सर्दी-गर्मी से घबराकर वस्त्र पहनते हैं तो संसारी जीवों में और ऐसे भगवान् में क्या अन्तर है ? संसारी जीव भी तो ऐसा ही करते हैं। वे तो अपनी लज्जा, वासना

१. अन्तर विषयवासना वरते, बाहर लोकलाजभय भारी।
तातैं परम दिगम्बर मुद्रा, धरि नहिं सकै दीन संसारी॥

को ढकने के लिए वस्त्र पहनते हैं, वे अपने रूप में निखार लाने के लिए नये-नये, भाँति-भाँति की डिजाइन वाले वस्त्र पहनते हैं और ये जिनको हम भगवान् मानते हैं वे भी भाँति-भाँति के वस्त्र पहनते हैं। वैसे देखा जाय तो भगवान् तो स्वयं सहज-सुन्दर ही होते हैं, उनको वस्त्रों से सुन्दरता बढ़ाने की क्या आवश्यकता है?

दूसरी बात, वस्त्र पहनने वाले विकल्प रहित भी नहीं हो सकते, क्योंकि वस्त्र वाले को उन वस्त्रों को सँभालना, रखना, उठाना, धोना, सिलवाना, खरीदना, अलग करना आदि अनेक कार्य करने ही पड़ते हैं। वे स्वयं नहीं करें तो किसी से करवाने पड़ते हैं। इन कार्यों को करने, कराने का टेंशन अवश्य रहता है, वे भगवान् कैसे कहे जा सकते हैं ?

लंगोटी से गृहस्थी बसी

एक बार एक साधु ने श्रावक गृहस्थों के बहुत समझाने पर एक लंगोटी पहनना स्वीकार कर लिया। उसने दो लंगोटी रखली। एक को पहनता था और दूसरी को धो-कर सुखा देता था। एक दिन किसी चूहे ने उनकी एक लंगोट को काट लिया। उसने सोचा, चूहों से लंगोट की रक्षा कैसे की जाय? उसने चूहों को भगाने के लिए एक बिल्ली पाल ली। बिल्ली को दूध पिलाने के लिए एक गाय रख ली। गाय हेतु घास आदि की व्यवस्था के लिए एक खेत खरीद लिया। उस खेत और गाय की देख-रेख के लिए, उसके दूध आदि को व्यवस्थित रखने के लिए एक नौकरानी रख ली। इस प्रकार कहते हैं कि एक लंगोटी मात्र परिग्रह रखने से उसकी घर-गृहस्थी बस गई तो जो सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनते हैं वे निर्विकल्प कैसे रह सकते हैं? और जो निर्विकल्प नहीं रह सकते हैं, जो निर्विकल्प नहीं हैं, वे भगवान् कैसे हो सकते हैं?

तीसरी बात, वस्त्र स्वयं परिग्रह रूप पाप है। जिसके पास परिग्रह है वह हिंसादि पापों से स्वप्न में भी नहीं बच सकता है। जहाँ हिंसादि पाप हैं वहाँ भगवन्तपना तो बहुत दूर, धर्म का प्रारम्भ भी नहीं हो सकता है। जिसके पास धर्म नहीं है वह हमारा आराध्य कैसे हो सकता है? और भी अनेक प्रकार की

युक्तियों, तर्क, आगम आदि से विचार करना चाहिए कि वस्त्र वाले, भगवान् हो सकते हैं या नहीं ?

(५) प्रश्न - आभूषण पहनने वाले भगवान् क्यों नहीं हो सकते?

उत्तर - आभूषण पहनने वाले भी भगवान् नहीं हो सकते हैं क्योंकि आभूषण पहनने के कई कारण होते हैं-

१. अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिए।

२. शरीर को कमनीय और सुन्दर बनाने के लिए **अथवा**

३. ''मैं बड़ा आदमी हूँ'' इस प्रकार के मान को पुष्ट करने के लिए व्यक्ति आभूषण पहनता है।

जो असुन्दर/कुरूप होता है वह अपनी कुरूपता को ढकने/छिपाने के लिए आभूषण पहनता है तो क्या भगवान् भी शरीर की सुन्दरता और कुरूपता को अपनी (आत्मा की) सुन्दरता और कुरूपता मानते हैं इसलिए आभूषण पहनते हैं? यदि ऐसा करते हैं तो वे भगवान् ही कैसे जो शरीर और आत्मा के भेद को ही नहीं समझते हैं। उनसे तो वे छोटे-मोटे वैरागी ही अच्छे हैं जो शरीर और आत्मा को भिन्न जानते हैं। अलग जानते ही नहीं अपितु शरीर से अपनत्व / ममत्व छोड़ने के लिए किसी प्रकार के आभूषण नहीं पहनते हैं। दूसरी बात यदि भगवान् भी अपना बड़प्पन दिखाने के लिए आभूषण पहनते हैं तो उसका अर्थ यह है कि उनमें भी अभी मान कषाय शेष है। जो मानी है वह भगवान् कैसे होगा क्योंकि कषायें तो हमेशा संसारी जीवों में होती हैं, भगवान् में नहीं। अथवा भगवान् भी आभूषण पहनकर अपनी सुन्दरता बढ़ाना चाहते हैं तो भी उनमें मान कषाय की ही पुष्टि होती है।

यदि वे अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिए आभूषण पहनते हैं तो पहली बात तो उनके पास वैभव कहाँ से आया ? यदि उनके पास भी धन-सम्पत्ति है तो वे उसका संग्रह करने के लिए आरम्भ (पापोत्पादक कार्य) अवश्य करते होंगे, क्योंकि पाप किये बिना धन-वैभव की प्राप्ति नहीं होती। कहा भी है-''समुद्र कभी शुद्ध जल से नहीं भर सकता, उसी प्रकार अधिक धन की प्राप्ति अन्याय-अनीति-पापारम्भ रूप गन्दे अर्थात् पापात्मक कार्यों से ही होती

है''। जो पाप करता है, वह तो धर्मात्मा हो नहीं सकता। जो धर्मात्मा नहीं है वह भगवान् कैसा ? आदि-आदि सब तर्कों से लगता है कि आभूषण पहनने वाले भगवान् नहीं हो सकते हैं।

(६) प्रश्न - क्या शस्त्र धारण करने वाले भगवान् हो सकते हैं?

उत्तर - शस्त्र रखने वाले भी सच्चे देव नहीं हो सकते हैं, क्योंकि शस्त्र वही व्यक्ति रखता है जिसको किसी से डर लगता हो अथवा किसी से हानि पहुँचने की शंका हो अथवा जो मरने से डरता हो। जिसको मरने से डर लगता है वह किसी से भी डर सकता है। संसार में देखा जाता है कि जब कोई व्यक्ति रात्रि में या अंधेरे में अथवा किसी सूने स्थान पर जाता है अथवा अकेला कहीं जाता है तो अपनी सुरक्षा के लिए छुरा, लाठी, तलवार, चाकू, पिस्तौल आदि कोई अस्त्र-शस्त्र अपने साथ ले लेता है ताकि अचानक कोई साँप, शेर, अजगर आदि जानवर मिल जावे या गुण्डे लोगों का गिरोह मिल जावे या लुटेरे पीछे लग जावें तो वह अपने धन की और अपनी जान की रक्षा कर सके। ऐसे संसारी जीव के समान क्या भगवान् भी मौत से डरते हैं अथवा साँप-बिच्छू जैसे क्षुद्र जीवों से डरते हैं अथवा जो उनकी पूजा करते हैं, उनको आराध्य मानते हैं उनसे भी डरते हैं। उन छोटे लोगों से, संसार में जो थोड़े बलिष्ठ होते हैं, माने जाते हैं, दादागिरी दिखाने वाले अथवा पुलिस आदि देश के सुरक्षा गार्ड भी नहीं डरते हैं तो क्या भगवान् उनसे भी छोटे हैं जो अपनी सुरक्षा के लिए त्रिशूल, तलवार, गदा, धनुष आदि शस्त्र लिये रहते हैं।

अथवा, क्या वे मरने से डरते हैं ? अरे ! संसार में किसी को समाधि/सल्लेखना धारण करनी हो अथवा जिसकी वृद्धावस्था आ गई हो अथवा जिसको शरीर और आत्मा की भिन्नता समझ में आ गई हो वह भी मृत्यु से नहीं डरता और ये भगवान् होकर भी मृत्यु से डरते हैं ? हमारा इतिहास साक्षी है कि कितने ही साधु-सन्तों ने और वारिषेण, सुदर्शन, जिनदत्त सेठ जैसे कई गृहस्थों ने भी जब उन पर उपसर्ग आ गया तब वे इस शरीर से मोह छोड़कर मृत्यु का वरण करने के लिए तैयार हो गये थे। करोड़ों सैनिक देश की रक्षा के लिए, करोड़ों धर्मात्मा धर्म की रक्षा के लिए स्वेच्छा से मौत के मुख में चले गये और ये

भगवान् होकर भी मौत से इतने डरते हैं कि चौबीसों घण्टे अपने पास शस्त्र लेकर बैठे रहते हैं, आदि-आदि अनेक युक्तियों से हम समझ सकते हैं कि अस्त्र-शस्त्र रखने वाले भगवान् नहीं होते हैं। भगवान् तो जन्मजात बालक के समान वस्त्र, आभूषण, साज-शृंगार, अस्त्र-शस्त्र आदि से रहित सहज सुन्दर होते हैं।

दूसरी बात, भगवान् तो निर्भीक होते हैं। उनको कोई मार नहीं सकता, क्योंकि वे वीतराग होने के साथ-साथ परम अहिंसक भी होते हैं। जो अहिंसक होते हैं अर्थात् सताना, मारना, पीटना, परेशान करना, जान ले लेना आदि दूसरों को दु:खी करने वाले काम नहीं करते उनको कोई नहीं मार सकता, उनको कोई डरा नहीं सकता, कोई दु:खी नहीं कर सकता। संसार में सहज रूप से कोई अप्रतिष्ठित व्यक्ति भी यदि परोपकारी है, सबका हित चाहता है, अहिंसक है तो उससे कोई नहीं डरता और उसको भी किसी का भय नहीं होता। उसके पास तो साँप, शेर, शिकारी कुत्ते जैसे क्रूर प्राणी भी चुपचाप बैठ जाते हैं, उनका उपदेश सुनते हैं, उनको देखने मात्र से उनके क्रूर परिणाम नष्ट हो जाते हैं। उनके पास शेर-गाय, साँप-नेवला, कुत्ता-बिल्ली जैसे जन्मजात वैरी भी वैर छोड़ देते हैं, साँप आदि उनके पास आकर भी उन्हें काटते नहीं हैं, किसी प्रकार से उनको पीड़ा नहीं देते हैं तो फिर ये तो हमारे सर्वोत्तम भगवान् हैं, इनको कौन मार सकता है; अहो ! इन्होंने तो मौत पर विजय भी प्राप्त कर ली है अर्थात् जन्म-मृत्यु आदि सभी दोषों को नष्ट कर दिया है, इनको भय कैसे लग सकता है? आपने मंदिरों में भगवान् की वेदी के नीचे एक चित्र देखा होगा जिसमें गाय का बछड़ा शेरनी का तथा शेरनी का शावक गाय का दूध पी रहा है और गाय तथा शेरनी एक ही पात्र में से भोजन कर रही हैं। वह चित्र इसी का प्रतीक है कि भगवान् स्वयं निर्भीक हैं और उनके पास आने वाले भी निर्भीक हो जाते हैं। भगवान् को अस्त्र-शस्त्र रखने की कोई आवश्यकता ही नहीं है और जो अस्त्र-शस्त्र रखते हैं, वे किसी भी अपेक्षा सच्चे देव नहीं माने जा सकते हैं।

(७) प्रश्न - क्या जिनको भूख-प्यास लगती है, वे भगवान् हो सकते हैं?

उत्तर - जिनको भूख-प्यास लगती है वे भगवान् नहीं हो सकते हैं। कई लोग यह सोचते हैं कि कोई भी चेतन आत्मा, जीव बिना भोजन-पानी के अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता। भोजन-पानी के अभाव में जीव मरण को प्राप्त हुए देखे जाते हैं इसलिए चाहे भगवान् ही क्यों न हो, उन्हें अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए कुछ-न-कुछ तो खाना-पीना करना ही होता है। लेकिन उनका ऐसा मानना अज्ञान का द्योतक है। क्योंकि ऐसा मानने वाले को इतना भी पता नहीं है कि भूख किस कारण से लगती है। असाता-वेदनीय की उदय-उदीरणा के साथ-साथ मोहनीय कर्म का उदय होने पर खाने की इच्छा उत्पन्न होती है। संसार में जिसके प्रबल मोहनीय कर्म का उदय होता है वह यद्वा-तद्वा भक्ष्याभक्ष्य का विवेक किये बिना ही जहाँ-कहीं जो कुछ भी अर्थात् मांस, शराब, शहद जैसी घिनावनी वस्तुएँ खाने में भी संकोच नहीं करता है और जिसका मोहनीय कर्म थोड़ा-सा भी मंद हो जाता है तो वह अभक्ष्य अर्थात् हिंसाजन्य वस्तुओं को खाना, पीना, पहनना, लगाना (सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री) छोड़ देता है। जिसका मोह और कम हो जाता है वह दिन में केवल एक बार भोजन करने लगता है, मोह की और मन्दता होने पर वह दो दिन, चार दिन, दस दिन यहाँ तक कि चार-चार, छह-छह महीनों तक भोजन नहीं करता है। इस प्रकार जितना-जितना जीव का मोह क्षीण होता जाता है उतनी-उतनी भूख-प्यास की एवं भोगों की वेदनाएँ समाप्त होती जाती हैं। भगवान् बाहुबली स्वामी को मोह क्षीण हो जाने के कारण ही तो एक साल तक खाने-पीने की बात तो बहुत दूर, आँख खोलकर किसी वस्तु को देखने तक की इच्छा उत्पन्न नहीं हुई थी। इसी प्रकार सुकुमाल,जिनको बिस्तर पर पड़ा सरसों का दाना भी चुभता था, उनका मोह मन्द होने पर सियालनी के दाँत भी नहीं चुभे। ऐसे ही मोह की मन्दता के उदाहरण अन्य भी देखे जा सकते हैं। तो भी वे भगवान् की श्रेणी में नहीं आते तो फिर जिनके सीधे-सीधे भूख-प्यास की वेदनाएँ हैं, वे भगवान् कैसे हो सकते हैं? जिनको हम भगवान् मानते हैं उनको भूखा मानकर कलाकन्द, पेड़ा, नारियल, मिश्री आदि भोज्य सामग्री का भोग चढ़ाते हैं और वे खुद भी अपने को भूख से व्यथित होकर भोजन-पानी की आकांक्षा करते हैं, वे भगवान् कैसे हो सकते हैं? उपर्युक्त उदाहरणों से संसारी जीव भी जब भूख को जीत लेते हैं तो वे वर्षों

तक भोजन नहीं करते हैं। फिर भगवान् के तो मोहनीय कर्म ही नहीं होता है क्योंकि भगवान् तो चार घातिया (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय) कर्मों का नाश होने पर ही बनते हैं। इनमें से एक भी कर्म के रहते हुए, इनका अंश मात्र शेष रहने पर भी जीव भगवान् नहीं बन सकता तो उसे भूख-प्यास की वेदना कैसे हो सकती है? जिसके भूख-प्यास की बाधा हो, वह भगवान् कैसे हो सकता है?

दूसरे, जहाँ तक प्राणरक्षण की बात है नरकों में असंख्य वर्षों तक बिना भोजन के भी जीव जीवित रहता है क्योंकि संसारी जीवों के जीवन का कारण आयु कर्म है और निश्चय से तो जीव अपने चैतन्य अर्थात् ज्ञान-दर्शन रूप प्राणों से ही जीता है। हमारे भगवान् के आयुकर्म भी है और (सिद्ध भगवन्त चैतन्य प्राणों से जीते हैं) चैतन्य प्राण भी हैं, उन्हीं प्राणों से वे जीवित रहते हैं। इसलिए असंख्य वर्षों तक भी हमारे सच्चे देव-भगवान् यदि बिना खाये-पीये जी जावें तो कोई आश्चर्य नहीं है, फिर उनके मोहनीयकर्म का मूल से ही नाश हो गया है तो उनको भूख-प्यास की बाधाएँ कैसे हो सकती हैं?

अत: जिनके भोग चढ़ता है, जिनको भूख-प्यास की बाधाएँ होती हैं वे सच्चे देव नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार जिनको ठंड-गर्मी, रोग, पसीना आदि की बाधाएँ होती हैं, वे सच्चे देव नहीं हो सकते हैं।

(८) प्रश्न-यदि भगवान् को भूख नहीं लगती वे कुछ खाते नहीं हैं तो उनको अनेक प्रकार की नैवेद्य, चावल, नारियल, चिटकी, बादाम आदि खाने-पीने की वस्तुएँ क्यों चढ़ाई जाती हैं ?

उत्तर - भगवान् को नैवेद्य, चावल, पानी आदि उनकी भूख-प्यास मिटाने के लिए नहीं चढ़ाए जाते। उनको चढ़ाने के दो कारण हैं-

(१) भगवान् हमारे पूज्य पुरुष हैं। उनके पास हमें खाली हाथ नहीं जाना चाहिए[१] क्योंकि संसार में सामान्य से भी किसी पूज्य पुरुष अथवा अपने से बड़ों के पास जाते समय कोई-न-कोई छोटी-मोटी भेंट अवश्य लेकर जाया जाता है, जैसे-सुदामा अपने मित्र श्रीकृष्ण से मिलने गया तो एक फटे कपड़े

१. रिक्तपाणिर्न पश्यन्तु राजानं देवतां गुरुं।

में चावल ही बाँध कर ले गया था इसलिए हम भी त्रिलोकपूज्य जिनेन्द्रदेव के पास खाली हाथ कैसे जा सकते हैं इसीलिए हम कुछ-न-कुछ द्रव्य लेकर ही जाते हैं। दूसरी बात संसार की रीति है कि हमारे घर में हमारे पास जो भी वस्तुएँ हैं उनमें से सबसे अच्छी वस्तु हम अपने इष्ट देव को समर्पित करें इसलिए चावल, नैवेद्य आदि उत्तम-उत्तम वस्तुएँ उन्हें भेंट करते हैं और जो भक्त होते हैं वे अपनी शक्ति के अनुसार ही भगवान् को भेंट चढ़ाते हैं। शायद इसीलिए सुदामा भी श्रीकृष्ण के पास चावल लेकर गया था। उसके घर में भी गेहूँ, दाल, मक्का आदि अनेक वस्तुएँ होंगी लेकिन उन सब वस्तुओं में से चावल सबसे उत्तम थे इसलिए उन्हें ही अपने मित्र को भेंट करने ले गया।

दूसरा कारण, हम आठ द्रव्य चढ़ाकर उनके समान ही बनने के लिए, जन्म-जरा-मृत्यु आदि को नष्ट करने के लिए प्रतीक रूप में जल-चन्दनादि चढ़ाते हैं-

जल - अनादिकाल से हमारी आत्मा जन्म-जरा-मृत्यु से मलिन हो रही है। लोक में शरीर आदि की मलिनता जल से साफ की जाती है। संसार में पेय पदार्थों में सर्वोत्तम जल माना गया है क्योंकि जल के बिना प्यास शांत नहीं होती, भोजन का पाचन नहीं होता और हमारे द्रव्य प्राणों की रक्षा भी नहीं हो सकती है। अत: मैं जन्म आदि मलों का नाश करने के लिए प्रतीक रूप में यह जल आपको चढ़ाता हूँ।

चन्दन - शरीर का ताप चन्दन से नष्ट होता है। मैं संसार का ताप नष्ट करने के लिए यह चन्दन भेंट करता हूँ।

अक्षत - जिस प्रकार ये चावल कभी उगते नहीं हैं, उसी प्रकार से मैं भी पुन: कभी जन्म ग्रहण नहीं करूँ, इसी भावना से अक्षत चढ़ाये जाते हैं।

पुष्प - काम का दूसरा नाम पुष्प भी है। मैं कामबाण से दुखी हूँ आपने उसको जीत लिया है इसलिए मैं भी काम को नष्ट करने के लिए ये पुष्प चढ़ाता हूँ।

नैवेद्य - नैवेद्यों से क्षुधा समाप्त होती है लेकिन कुछ काल के लिए। कुछ ही देर में पुन: क्षुधा उत्पन्न हो जाती है। आपने उस क्षुधा को नष्ट कर

दिया है अत: मैं भी इन नैवेद्यों को भेंट करके अपनी क्षुधा को नष्ट करना चाहता हूँ।

दीप - मोह के अंधेरे को यह दीपक नष्ट नहीं करता फिर भी लौकिक अंधकार तो इस दीपक से नष्ट होता है इसलिए मैं आपको यह दीपक भेंट करके अपना मोहान्धकार नष्ट करना चाहता हूँ।

धूप - मैं आपके चरणों में यह धूप जलाकर चाहता हूँ कि मेरे आठों कर्म भी जल जावें।

फल - अनेक प्रकार की पुण्यात्मक क्रियाओं में अनेक प्रकार के फल प्राप्त होते हैं लेकिन मैं तो ये फल चढ़ाकर शाश्वत मोक्षफल को चाहता हूँ जो प्राप्त होने के बाद कभी नष्ट नहीं होता है।

अर्घ - उपर्युक्त आठों द्रव्यों को चढ़ाकर मैं चाहता हूँ कि मुझे वह अनर्घ्य पद मिल जावे, जिसका संसार में कोई मूल्य नहीं आँका जा सकता है।

सामान्य से जिसकी जितनी शक्ति होती है वह उतने द्रव्य भगवान् को भेंट करके एक प्रकार से उनके प्रति श्रद्धा-आस्था, सम्मान, बहुमान प्रकट करता है।

दूसरी बात, भगवान् के सभी कषायों का मूल से ही नाश हो गया है। हम उनके दर्शन हेतु जा रहे हैं तो हम भी अपनी लोभ कषाय को थोड़ा कम करने के लिए कुछ द्रव्य भेंट करते हैं। अत: यह खोटी धारणा समाप्त कर देनी चाहिए कि हम जो द्रव्य चढ़ाते हैं वे भगवान् के खाने, भोग के लिए चढ़ाते हैं।

भगवान् वे ही होते हैं जिनको संसारी जीवों के समान न भूख लगती है, न उन्हें खाने की इच्छा होती है, न खाने की आवश्यकता होती है।

(९) प्रश्न - क्या जो शाप देते हैं वे भगवान् हो सकते हैं ?

उत्तर - नहीं, शाप देने वाले कभी भगवान् नहीं हो सकते हैं, क्योंकि शाप देने का परिणाम क्रोध आने पर ही होता है। क्रोध कषाय करने वाले को लौकिक दृष्टि से भी अच्छा नहीं माना जाता है। जो क्रोध करता है उसको पापी, दुष्ट कहा जाता है। क्रोधी व्यक्ति के पास कोई जाना नहीं चाहता है, उसकी

कोई संगति नहीं करना चाहता है। क्रोधी को क्रोध के फलस्वरूप इहलोक तथा परलोक में हमेशा दुख ही मिलता है। **दूसरे,** क्रोध करने के पहले निश्चित रूप से सामने वाले के दोष, भूल अथवा अवगुण पर दृष्टि जाती है। **तीसरे** जब हमारे मान (कषाय) पर ठेस लगती है अर्थात् कोई हमारी आज्ञा का पालन नहीं करता है, हमारी बात नहीं मानता है तो हमें गुस्सा आ जाता है। संसारी जीवों को इन तीन कारणों से गुस्सा आता है। वे गुस्से में दूसरे का बुरा करने के लिए जो मुँह में आया बोल देते हैं। उनकी बोली हुई बात कभी-कभी कर्मसंयोग से फल जाती है पर अधिकांशत: नहीं फलती है क्योंकि **कौवों के कोसने से ढोर नहीं मरते हैं।** अर्थात् किसी के कहने से किसी का कुछ नहीं होता है, सबका अपने-अपने पूर्वोपार्जित कर्मोदय के अनुसार ही अच्छा-बुरा होता है अत: जो क्रोधित होकर या मान कषाय के वशीभूत होकर दूसरों का बुरा करने के लिए कठोर वचन कह देता है, वह संसारी नहीं तो और कौन है अथवा जो दूसरे के दोषों पर ही अपनी दृष्टि रखता है अर्थात् जो बैठा-बैठा दूसरे के दोषों को ही देखता रहता है, दोष देखकर उनको सुधारता नहीं है अपितु शाप देता है वह मुझे तो संसारी जीवों से भी गया-बीता अर्थात् हीन लगता है क्योंकि संसार में जो भी दयालु होते हैं वे दूसरे के दोष को सुधारने की कोशिश करते हैं और क्षमाशील लोग तो बड़े-से-बड़े पापियों को भी माफ कर देते हैं अत: उस देवता की अपेक्षा तो हम और आप ही अच्छे हैं जो कम-से-कम सामने वाले की छोटी-मोटी गलतियों को तो माफ कर ही देते हैं, किसी को मरने, सत्यानाश होने जैसे शाप तो नहीं देते हैं। दूसरे, जिसको जिस चीज की आवश्यकता होती है उसको हर वस्तु में हर स्थान पर, हर व्यक्ति में वो ही वो दिखाई देता है। एक बच्चा बहुत शैतान था। एक दिन उसकी शैतानी से तंग आकर उसकी माँ ने उसे खाने के लिए रोटी नहीं दी। उसे भूखा ही स्कूल भेज दिया। स्कूल में अध्यापक जी ने उससे एक सवाल पूछा। वह उत्तर देते हुए बोला-सर ! दो और दो चार रोटी होती है। सर ने दो-तीन सवाल और पूछे, उसने सभी सवालों के उत्तर सही दिये लेकिन सभी के साथ 'रोटी' लगाकर दिये। उसके उत्तरों को सुनकर सर समझ गये कि इसने आज रोटी नहीं खाई है। कहने का आशय यह है कि जिसको जिस चीज की आवश्यकता होती है उसे सर्वत्र वही

चीज दिखाई देती है तो क्या हमारे भगवान् को भी दोषों / गलतियों / त्रुटियों की आवश्यकता है जो वे दूसरे की गलतियाँ देखते हैं और उनसे रुष्ट होकर शाप दे देते हैं। अरे ! संसार में सामान्य लोग भी अपने से छोटों की गलतियों को यूँ ही माफ कर देते हैं फिर ये तो भगवान् हैं, संसार के शरणभूत हैं, वे ऐसा कैसे कर सकते हैं ?

तीसरी बात, संसारी जीव भी अपना भला करने वालों को 'दूधों-नहावो पूतों-फलो'' जैसे आशीर्वचन कह देते हैं और अपने से विपरीत चलने वालों को देखकर मुँह फेर लेते हैं, ऐसे ही यदि हमारे भगवान् करते हैं तो उनमें और संसारी में अन्तर ही क्या रहा सो हम उनको पूजें, उनकी पूजा से हमारा कल्याण हो, हमारे भगवान् बनने के योग्य हो सकें। अत: शाप देने वाले तो सच्चे देव किसी भी प्रकार से नहीं हो सकते हैं।

(१०) प्रश्न - क्या जो इच्छित पदार्थ देते हैं वे सच्चे देव हो सकते हैं?

उत्तर - जो इच्छित पदार्थ देते हैं वे भी सच्चे देव नहीं हो सकते हैं क्योंकि इच्छित पदार्थ देने वाले में राग अवश्य होगा। राग / स्वार्थ के बिना कोई किसी को भी इच्छित पदार्थ नहीं दे सकता है। वह इच्छित पदार्थ भी अपने प्रति भक्ति प्रेम रखने वाले को ही दिया जाता है। भक्त भी अपने भगवान् से इच्छित पदार्थ प्राप्त कर प्रसन्न होता हुआ विशेष भक्ति करता है। संसार में भी राजा-महाराजा, नेता, मंत्री आदि अपना पक्ष लेने वाले, सहायता करने वाले को इच्छित पदार्थ दे ही देते हैं। उसके कार्य को जल्दी निपटा देते हैं, उसकी गलतियों को भी माफ कर देते हैं। जैसा संसार में होता है वैसा ही यदि भगवान् भी करते हैं तो भगवान् और संसारी जीवों में क्या भिन्नता रही? अर्थात् कुछ नहीं।

दूसरी बात, जो लोक में कहा जाता है कि हमें तो भगवान् की कृपा से सब कुछ मिल जाता है, हमारे कार्य की सिद्धि सहज ही हो जाती है, हम तो भगवान् की भक्ति करेंगे, हमारी सब आपदाएँ अपने आप टल जायेंगी, आदि। इन सब बातों में भी यही कहा गया है कि भगवान् की भक्ति से कार्य की सिद्धि हो जाती है, आपत्तियाँ भाग जाती हैं। यह सब बिल्कुल सही है कि जो भगवान्

की भक्ति करता है उसके पूर्वोपार्जित पापों का क्षय होता है और भविष्य के लिए प्रबल पुण्य का आस्रव होता है। पाप का नाश हो जाने से आई हुई आपत्तियाँ टल जावें तथा पुण्य का बन्ध होने से भविष्य में आपत्तियाँ नहीं आवें तो इसमें आश्चर्य वाली क्या बात है? ऐसा तो होता ही है लेकिन भगवान् हमारी आपत्तियाँ दूर करते हैं, यह विचारणीय विषय है क्योंकि भगवान् कोई दलाल या वकील तो हैं नहीं जो भक्ति रूपी दलाली, घूस मिलने पर खुश होकर हमारे कार्य की सिद्धि कर दें, हमारी आपत्तियाँ दूर कर दें। भगवान् तो लोक के सर्वोत्तम व्यक्ति हैं जो दुनिया में होने वाले कार्यों को देखते जानते मात्र हैं, करते नहीं हैं। वे न राग-द्वेष करते हैं और न ही हर्ष-विषाद।

तीसरी बात, भगवान् दुनिया के लोगों के कार्य करते हैं, ऐसा मानने वालों को सोचना चाहिए कि एक अकेले भगवान् संसार के अनन्त जीवों के कार्यों की सिद्धि कैसे करेंगे? जबकि हम दो-चार कार्य करके भी थक जाते हैं तो क्या भगवान् इतने लोगों के कार्य करके नहीं थकेंगे। फिर क्या कोई व्यक्ति त्याग-तपस्या करके इसलिए भगवान् बनता है कि वह संसारी जीवों से भी ज्यादा व्यस्त हो जाये, संसारी जीवों से भी ज्यादा काम करे, संसारी जीवों के काम कर-करके ज्यादा दु:खी हो जावे, यदि वह रात-दिन संसारी जीवों के काम ही करता रहेगा तो अपनी आत्मा का सुख कैसे भोगेगा, कब भोगेगा ? यदि वह भगवान् बनकर भी आत्मिक सुख का आनन्द नहीं ले पाया तो भगवान् बनने का सार ही क्या निकला? आदि-आदि अनेक युक्तियों से यदि सोचा जाय तो इच्छित पदार्थों को देने वाला भी भगवान् नहीं होता अपितु जिनकी भक्ति करने से इच्छित पदार्थ स्वत: ही प्राप्त हो जाते हैं, वे ही सच्चे देव होते हैं।

(११) प्रश्न - क्या सच्चे देव को भी वस्त्राभूषण पहना दें तो वे सच्चे देव नहीं रहते हैं ?

उत्तर - साक्षात् भगवान् को वस्त्राभूषण पहनाने की बात तो बहुत दूर समवसरण / गंधकुटी में विराजमान उनको कोई छू तक नहीं सकता। यहाँ तक कि गणधर देव जिनके बिना भगवान् की देशना नहीं होती, भगवान् की दिव्यध्वनि नहीं खिरती, वे भी प्रभु के चरणों का स्पर्श नहीं कर सकते तो फिर सामान्य

जन की तो बात ही क्या है, क्योंकि उनका परम औदारिक शरीर होता है जो आँखों के द्वारा दिखते हुए भी स्पर्श नहीं किया जा सकता है। फिर भगवान् जो सिंहासन पर विराजमान कहे जाते हैं, सिंहासन का स्पर्श तक नहीं करते। विहार के समय उनके चरण रखने के स्थान पर दो सौ पच्चीस कमलों की रचना होने पर भी वे उनसे चार अंगुल अधर (ऊपर) ही विहार करते हैं, उनको वस्त्राभूषण कौन पहना सकता है!

दूसरी बात, तेरहवें गुणस्थान में अनन्त चतुष्टय से सम्पन्न भगवन्तों पर किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं हो सकता है। उपसर्ग दशा में केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती अथवा यूँ कहिए कि केवलज्ञान होने के समय में उनके शरीर पर किसी प्रकार का अन्य कोई भी पदार्थ लगा हुआ नहीं रह सकता है, चाहे वह चेतन हो या अचेतन साँप, बिच्छू हो या वस्त्राभूषण। उनका परमौदारिक शरीर सर्वाङ्ग सुन्दर होकर निर्ग्रन्थ मुद्रा में 'युवा' सी छवि धारण करने वाला होता है।

यहाँ हमारे जो जिनबिम्ब[१] हैं उनको यदि कोई वस्त्राभूषण पहना देते हैं अथवा उन पर वस्त्राभूषण की आकृतियाँ भी बना देते हैं तो वे बिम्ब सच्चे देव के बिम्ब नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि हमने जिनके प्रतीक रूप में बिम्ब स्थापित किया है वे ऐसे अर्थात् वस्त्राभूषण धारण करने वाले नहीं थे।

तीसरी बात, लोक में भी यदि कोई मुनि है और उसको उसके माता-पिता आदि पारिवारिक लोग या कोई और भी यदि कपड़े पहना देते हैं या उसका शृंगार कर देते हैं और वे उन्हें धारण ही किये रहते हैं तो क्या हम उन्हें साधु मानते हैं ? नहीं। तो फिर वस्त्राभूषणों से अलंकृत बिम्ब को हम सच्चे देव का बिम्ब कैसे मान सकते हैं?

(१२) प्रश्न - आपकी इन बातों से तो ऐसा लगता है कि लता वेष्टित भगवान् बाहुबली के बिम्ब और फण सहित भगवान् पार्श्वनाथ के बिम्ब सच्चे देव का स्वरूप निदर्शित नहीं करते हैं ? क्या ऐसा कह सकते हैं?

१. जिनबिम्ब को ही साक्षात् जिनदेव मानो -आ. विद्यासागरजी : श्रुताराधना, पृ. ४३

उत्तर - नहीं, हमारे जिनालयों में बेल चढ़ी हुई बाहुबली भगवान् की प्रतिमाएँ तथा फण से युक्त पार्श्वनाथ आदि की प्रतिमाएँ विराजमान हैं, उन परमेष्ठि भगवन्तों की उस अवस्था अर्थात् साधना काल में जब उन पर उपसर्ग हुआ था उस अवस्था का स्मरण कराती हैं। वे प्रतिमाएँ इसलिए स्थापित की जाती हैं ताकि उनको देखकर दर्शनार्थी को उनका परम वैराग्य से परिपूर्ण जीवन याद आ जावे कि उन्होंने इतने कठोर उपसर्गों को कितनी समता से सहन किया था। हम में भी उनके समान उपसर्गों को सहन करने की क्षमता आवे। इसलिए ऐसी प्रतिमाएँ स्थापित करने में कोई दोष नहीं हैं। ये प्रतिमाएँ शृंगार या राग का निदर्शन नहीं करतीं अपितु वीतरागता को ही पुष्ट करती हैं और बिना बोले ही बहुत कुछ सन्देश देती हैं।

(१३) प्रश्न - क्या कोई विशेष नाम वाला भगवान् होता है?

उत्तर - नहीं, नाम तो लोक व्यवहार चलाने के लिए रखा जाता है। गुण, जाति, द्रव्य और क्रिया की अपेक्षा के बिना ही इच्छानुसार किसी का नाम रखना नाम निक्षेप कहलाता है। कोरा नाम पूज्य नहीं होता। गुण ही पूजा के निमित्त बनते हैं और भक्त भी उन गुणों की प्राप्ति के लिए ही अनन्तगुणसम्पन्न भगवान् की पूजा करता है। कहा भी है -

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृतां।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये॥

'मेरी भावना' में सब प्रतिदिन बोलते हैं-

जिसने रागद्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो॥

लौकिक क्षेत्र हो या पारलौकिक क्षेत्र हो सर्वत्र गुणवान ही आदर्श माना जाता है, कोई नामविशेषधारी नहीं।

भगवान् का कोई विशेष नाम नहीं होता है। संसार में भी नाम की पूजा

नहीं होती है, पूजा तो हमेशा गुणों की ही होती है। कई बार तो नाम और गुण परस्पर विपरीत होते हैं। यहाँ ज्ञानचन्द जी मूर्ख देखे जाते हैं तो फकीरचन्द जी धनवान। अमरचन्दजी मरते हैं तो लक्ष्मी बाई कचरा बीनती देखी जाती है। पूनम का रंग पक्का होता है तो कृष्णा गौरवर्ण की होती है। कहने का अभिप्राय यही है कि नाम की पूजा नहीं होती, सर्वत्र गुण ही पूज्य होते हैं। भगवान् भी किसी विशेष नाम वाले नहीं होते अपितु वीतराग, सर्वज्ञ तथा हितोपदेशिता गुणवाले ही होते हैं।

(१४) प्रश्न - क्या स्त्री भी सच्चा देव हो सकती है?

उत्तर - नहीं, अपनी पर्यायजन्य सीमाओं के कारण वह इस गौरव को पाने में असमर्थ रहती है। स्त्री वस्त्रों से रहित नहीं रह सकती है। उसका मन एकाग्र भी नहीं हो पाता। वह एकान्त में निर्भय होकर नहीं रह सकती। कर्मभूमियाँ स्त्रियों के प्रथम वज्रवृषभ नाराचसंहनन भी नहीं हो सकता और कर्मों का नाश हुए बिना पूर्ण वीतरागता प्रकट नहीं हो सकती और पूर्ण वीतरागता प्रकट हुए बिना कोई सच्चा देव नहीं हो सकता।

(१५) प्रश्न - क्या भगवान् का कोई अतिशय/चमत्कार नहीं होता, हमने तो सुना है कि अमुक भगवान् का बहुत अतिशय है, उनके सामने कोई भी मनोकामना करो, पूरी हो जाती है तो क्या वे सच्चे देव नहीं होते जिनके सामने मनोकामना करने पर वह पूरी हो जाती है?

उत्तर - किसने कहा भगवान् के अतिशय नहीं होते हैं। अरे, भगवान् के तो जन्म से ही अतिशय होते हैं। दुनिया भगवान् के भले ही एक दो अतिशय माने, हमारे आचार्यों ने तो सच्चे देव के चौंतीस अतिशय कहे हैं। उनमें से दस अतिशय तो उस समय भी होते हैं जब वे भगवान् नहीं होते, जब उनके पास न पूर्ण ज्ञान ही होता है और न संयम, जब वे बच्चे ही होते हैं। दस अतिशय उनको केवलज्ञान होने के बाद प्रकट होते हैं और चौदह अतिशय देवों के द्वारा प्रकट किये जाते हैं। लोक में इन अतिशयों की तरफ तो किसी का ध्यान ही नहीं है। लोग तो उसको अतिशय मानते हैं जो चमत्कार उत्पन्न करने वाली घटना होती है। जैसे-रात्रि में मंदिर से घुंघरू बजने की, ढोल-नगारे, नृत्य करते हुए

पायल आदि की आवाजें आती हैं अथवा जिनके सामने हमारा सोचा हुआ कार्य सिद्ध हो जाता है, आदि। संसार के कोई भी सच्चे देव ऐसे नहीं हैं जो तीन लोक में पूज्य नहीं हो,[१] जिनकी देवता भी सेवा-भक्ति पूजा नहीं करते हों, जिनके सामने सोचा हुआ कार्य सिद्ध नहीं होता हो। भगवान् की चाहे छोटी प्रतिमा हो अथवा बड़ी प्रतिमा हो (अथवा साक्षात् भगवान् हों) प्रत्येक जिनबिम्ब के सामने अपना सोचा हुआ कार्य सिद्ध होता ही है। हमारे सोचे हुए कार्य को ज्ञाता-द्रष्टा वीतराग भगवान् पूरा नहीं करते किन्तु हम जो उनकी भक्ति करते हैं, भगवान् के प्रति जो हमारी आस्था, श्रद्धा है उससे पूर्वोपार्जित पाप का क्षय होता है पुण्य का आस्रव होता है, उसी के फल में हमारे कार्य की सिद्धि होती है। उसमें भी यदि हम बहुत बड़ा कार्य सोचते हैं और भक्ति कम करते हैं, हमारी आस्था में कहीं शंका-आकांक्षा रूपी घुन लगा हुआ है तो हमारे कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। जिस प्रकार एक खम्भे को उखाड़ना है तो उतनी ही ताकत वाला आदमी चाहिए और उसको उखाड़ने के योग्य घन आदि साधन भी आवश्यक हैं; उसी प्रकार हमें अपने पूर्वोपार्जित प्रबल कर्म का क्षय करना है तो हमारे भीतर भी उतनी ही भक्ति, उतने ही प्रबल भाव एवं उतनी ही प्रगाढ़ श्रद्धा चाहिए।

जो यह मानता है कि भगवान् हमारा कार्य सिद्ध करते हैं, उसकी आस्था और भक्ति जब कम होती है और कर्म प्रबल होता है तब उसके कार्य की सिद्धि नहीं होती है तो भगवान् के प्रति उसकी आस्था समाप्त हो जाती है। वह भगवान् के प्रति भी यद्वा-तद्वा बोलने लगता है और धर्म करना, परभव सुधारक अच्छे कार्य करना बन्द कर देता है। फलत: भगवान् का तो कुछ नहीं बिगड़ता वह स्वयं ही दुर्गति में चला जाता है और अधिक दु:खों से ग्रस्त होता है।

एक महिला को एक स्थान विशेष के जिनबिम्ब के प्रति बहुत आस्था थी क्योंकि उसने उन भगवान् के सामने जितनी मनोकामनाएँ की थीं, वे सभी पूरी हुई थीं अत: उसकी आस्था और प्रगाढ़ हो गई। एक बार उसकी बहिन का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। उसने अपने भगवान् से बहुत प्रार्थनाएँ कीं,

१. गनधर, अशनिधर, चक्रधर, हलधर, गदाधर वरवदा।
अरु चापधर, विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा ॥
जयमाला, महावीर स्वामी पूजा : वृन्दावन

मनौतियाँ कीं लेकिन उसकी बहिन के स्वास्थ्य में जब कोई लाभ नहीं हुआ तो उसको अपने भगवान् के प्रति इतना गुस्सा आया कि (मेरे अनुमान से यदि उसका वश चलता तो वह उस जिनबिम्ब को खण्डित कर देती या उठाकर फेंक देती) उसने भगवान् को खूब गालियाँ दीं। इससे भगवान् का तो कुछ नहीं बिगड़ा किन्तु उसके ही घोर पापास्रव हुआ और कुछ ही समय में उसे बहिन के वियोग का घोर कष्ट भोगना पड़ा। ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण अपने आस-पास ही देखे जा सकते हैं। अश्रद्धा रखने से स्वयं का ही काम बिगड़ता है, अशान्ति का अनुभव होता है। भगवान् का तो कुछ बिगड़ता नहीं क्योंकि वे तो कुछ करते ही नहीं, वीतरागी हैं।

किसी-किसी मन्दिर में देव-गण नाचते हुए, भक्ति करते हुए, दूसरे के दु:खों का शमन करते हुए देखे जाते हैं और किसी-किसी मंदिर में नहीं देखे जाते हैं। इसका कारण मुझे तो ऐसा लगता है कि किसी मनुष्य ने भगवान् की भक्ति की, प्रतिदिन पूजा की, उनके नाम की माला फेरी अर्थात् कोई मनुष्य किसी बिम्ब/भगवान् विशेष का जीवन-भर परम भक्त रहा। वह मरकर कर्मयोग से भवनत्रिक में जन्मा। वहाँ जाने के बाद उसने अपने जातिस्मरण अथवा अवधिज्ञान से यह जान लिया कि ये भगवान् मेरे हैं, मैंने मनुष्य पर्याय में इनकी बहुत भक्ति, पूजा, अर्चना की थी, अब मैं अपने भगवान् कैसे पाऊँ ? **अथवा** मैं ऐसा चमत्कार दिखाता हूँ कि बहुत सारे लोग मेरे भगवान् के भक्त बन जाएँ, इनके पास आने लगें, इनकी विशेष रूप से पूजा करने लगें आदि-आदि भावनाओं से कभी मंदिर में घंटे बजाता है, कभी नाचने की मधुर-ध्वनियाँ आदि करके लोगों को आकर्षित करता है, कभी-कभी जिस प्रकार डॉक्टर योग्य दवाई देकर मरीज को ठीक कर देता है उसी प्रकार यह भी मंत्र रूपी दवाई देकर लोगों की बीमारियाँ ठीक करने में निमित्त बनता है। बस, लोग इसे ही चमत्कार कह देते हैं, यही अतिशय कहलाता है।

वस्तुत: चमत्कार का मूल कारण तो भक्त की अपनी श्रद्धा है। यदि कहीं, किसी मंदिर अथवा जिनबिम्ब में साक्षात् ऐसा कोई अतिशय नहीं भी दिखाई दे तो भी वह सच्चे देव का ही बिम्ब है। उनकी श्रद्धा से हमारा मिथ्यात्व खण्ड-खण्ड हो सकता है, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। हमारे आचार्य भगवन्तों

ने तो यहाँ तक कहा है कि एक जौ के बराबर भी जिनबिम्ब हो तो उसकी श्रद्धा, पूजा, अर्चना से अनादिकाल से हमारे साथ लगा संसार का मूल कारण दर्शन मोह (मिथ्यात्व) नष्ट हो सकता है। इससे बड़ा चमत्कार और क्या हो सकता है!

भगवान् **समन्तभद्र स्वामी** ने जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति करते हुए **देवागमस्तोत्र (आप्त मीमांसा)** में कहा है कि हे भगवन् ! आपका आकाश में गमन होता है, आपको पसीना नहीं आता है, आपके छत्र-चँवर आदि विभूतियाँ हैं इसलिए मैं आपकी पूजा नहीं करता, आपको सच्चा देव नहीं मान सकता, नहीं मानता क्योंकि आकाशगमन आदि अतिशयित क्रियाएँ तो देवों में, मांत्रिकों में अथवा विद्याधरादि में भी देखी जाती है। मैं तो आपको इसलिए भगवान् मानता हूँ कि आपने ज्ञानावरणादिक कर्मों का मूल से ही नाश कर दिया है। आप में अज्ञान, मोह तथा राग-द्वेष आदि की अत्यन्त हानि हो गई है, क्योंकि ये विशेषताएँ आपको छोड़कर अन्य कहीं नहीं पाई जा सकती हैं अत: आप ही सच्चे देव हैं, मेरे आराध्य हैं।

कहने का आशय यह है कि भगवान् हमारी मनोकामनाओं की पूर्ति नहीं करते अपितु भगवान् की भक्ति से स्वत: हमारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी से हमारी मनोकामनाओं की पूर्ति होती है।[१] जो भगवान् को मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाला मानकर पूजता है वह सच्चे देव को भी एक प्रकार से सरागी देव समझकर ही पूजता है इसलिए उसके द्वारा सच्चे देव की पूजा करने पर भी सच्चे देव की आराधना, श्रद्धा करने से प्राप्त होने वाले सम्यग्दर्शन रूपी रत्न की प्राप्ति नहीं होती है।

(१६) प्रश्न - तो क्या हमें लौकिक कार्यों की सिद्धि के लिए भगवान् की भक्ति नहीं करनी चाहिए ?

उत्तर - नहीं, लौकिक कार्यों की सिद्धि के लिए कभी भगवान् की भक्ति

१. ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नसि शुभबंधतैं।
विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं ह्वै शर्म सब विधि तासतैं॥
– अभिषेक पाठ : हरजसराय

नहीं करनी चाहिए। पुत्र प्राप्ति के लिए, धन-वृद्धि के लिए या अपने रोग-शोक को मिटाने के लिए भगवान् की भक्ति करना तो वैसा ही मूर्खता का कार्य है जैसे कि कोई गधा खरीदने के लिए हाथी बेच दे, राख की प्राप्ति के लिए चन्दन जला दे अथवा धागे के लिए मणिमय हार को तोड़ डाले; क्योंकि भगवान् की भक्ति से तो मोक्ष की प्राप्ति होती है, शाश्वत सुख मिलता है, उस भक्ति के फल में हमने क्या माँग लिया कि पुत्र प्राप्त हो जाय, धन की वृद्धि हो जाय। संसार में शायद ही कोई ऐसा किसान हो जो खेत में बीज बो करके भगवान् से प्रार्थना करता हो कि '' हे भगवन् ! मेरे खेत में बहुत भूसा हो जावे, मेरे घर में इतनी सारी गायें हैं उन सबका पेट नहीं भर पाता है इसलिए मेरे खेत में लम्बी-लम्बी घास उगे।'' अपितु वह तो फसल अच्छी होने की ही कामना करता है। घास-फूस की प्राप्ति तो उसे यों ही हो जाती है। इसी प्रकार जो मोक्ष की प्राप्ति के लिए, कर्मों का क्षय करने के लिए जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति, आराधना करता है उसको लौकिक सुख, स्वर्ग का वैभव, चक्रवर्ती आदि की सम्पत्ति तो मिलती ही है।

मेरे विचार से तो हमें कभी भगवान् के सामने लौकिक सुखों की आकांक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं है। कहा भी है-''बिन मांगे मोती मिले मांगे मिले न भीख।'' फायदा तो 'नहीं माँगने' में ही है।

(१७) प्रश्न - सरागी देवों की पूजा करें, उन पर आस्था रखें तो क्या हानि है?

उत्तर - संसार में आदर्श उसी व्यक्ति को बनाया जाता है जिसके समान हमें बनना हो। जैसे किसी को इंजीनियर बनना है तो वह इंजीनियर के साथ रहे, उसके प्रति आस्था/श्रद्धा रखे, उसकी संगति करे; इंजीनियर बनने के योग्य पुस्तकें पढ़ें तो सम्भव है वह भविष्य में इंजीनियर बन जावे लेकिन यदि वह डॉक्टर के पास रहे, किसी सी.ए. के पास रहे, उस सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ें तो वह तीन काल में भी इंजीनियर नहीं बन सकता, क्योंकि उसने अपना आदर्श सी.ए. को बनाया, डॉक्टर आदि को बनाया। सी.ए. को आदर्श बनाने वाला तो सी.ए. ही बनेगा, डॉक्टर को आदर्श बनाने वाला तो डॉक्टर ही बनेगा।

इसी प्रकार यदि हमें वीतराग बनना है तो वीतराग देव को ही अपना आदर्श बनाना पड़ेगा। यदि हमने सरागी, कपड़े वाले, आभूषण वाले स्त्री-पुत्र-आयुध वाले को आदर्श बनाया तो हम भी वैसे ही बनेंगे। आप स्वयं सोचें कि आपको क्या बनना है, क्या वस्त्राभूषण वाले बनना है? क्या पत्नी वाला बनना है? क्या भविष्य में भी भूख आदि वेदनाओं से पीड़ित ही रहना है? क्या क्रोधी ही बने रहना है? यदि हाँ, तो आपको किसी भी देव की आराधना करने की कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि यह सब परिकर तो आपके पास अनादिकाल से है ही, अनन्तकाल से हम यही तो करते आ रहे हैं, सहज रूप से बिना किसी परिश्रम के ऐसा ही है, अब और ऐसे ही देवों की आराधना करके क्यों समय खराब करें? यदि हमें अपने जीवन को वर्तमान तथा भूतकाल के जीवन से कुछ विशेष बनाना है तो हमारा आदर्श भी उन्नत होना चाहिए। फिर हमें यदि संसार सागर से पार होना है तो हमारा आदर्श सर्वोत्तम ही होना चाहिए। सरागी देवों की पूजा करने से हमारा लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता है। अत: वीतराग सच्चे देव का ही श्रद्धान करना चाहिए।

(१८) प्रश्न - क्या सरागी देवों को पूजने की अपेक्षा तो कुछ आकांक्षा अर्थात् मनौती पूर्ण करने वाले मानकर अथवा मनौती पूर्ण करने के लिए सच्चे वीतरागी देवों को पूजना अच्छा नहीं है ?

उत्तर - नहीं, नहीं; यह तो ऐसा हो गया कि किसी ने चन्दन को सामान्य लकड़ी समझकर अपनी ठंड उड़ाने के लिए जला दिया अथवा कपड़े धोने के लिए उसका उपयोग किया। कितनी अनमोल वस्तु को हमने व्यर्थ ही खो दिया। हमने तो एक प्रकार से पारसमणि को पत्थर समझकर काग उड़ाने हेतु फेंक दिया। अमृत का मूल्य न समझकर उसे हाथ धोने में खर्च कर डाला अर्थात् जिनेन्द्रदेव जैसे संसार सागर से पार उतारने वाले खेवटिया को पाकर भी हमने उनका गौरव न समझकर तुच्छ सांसारिक सुखों की याचना कर अपना संसार बढ़ा लिया।

हाँ, फिर भी अन्य सरागी देवों को पूजने की अपेक्षा आकांक्षा/मनौती करके भी जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने वाले को एक लाभ अवश्य होता है

वह यह कि जिनेन्द्र भगवान् का वह आराधक सम्यग्दर्शन के आयतन में बैठा है, उनके चरणों में है। जिस दिन उसे जिनेन्द्रदेव का सम्यक् स्वरूप समझ में आ जाएगा, जिस दिन वह यह समझ जायेगा कि ये हमारे आराध्यदेव किसी का भला-बुरा नहीं करते, ये किसी को पुत्र,पौत्र, धन-सम्पदा नहीं देते। अहो! ये तो परम वीतरागी हैं, ये तो सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञाता-द्रष्टा हैं, कर्त्ता-भोक्ता नहीं हैं, ये संसार के सभी विकल्पों, सुख-दुःख, रोग-शोक, जन्म-जरा-मृत्यु आदि सर्व दोषों से रहित परमात्मा हैं, इनमें राग-द्वेष, मोह, अज्ञान, भ्रम-विभ्रम आदि संसारी जीवों में पाये जाने वाले विभाव परिणाम नहीं हैं; ये इन सबसे मुक्त अपनी आत्मा के आनन्द में ही डूबे रहते हैं। इनका कोई अच्छा-बुरा करे, निन्दा-प्रशंसा करे, अर्घ्य चढ़ावे या वार करे; इनमें किसी भी प्रकार के कोई राग अथवा द्वेष भाव उत्पन्न नहीं होते हैं.....। उसी दिन, उसी समय उसे सम्यग्दर्शन रूपी अमूल्य रत्न की प्राप्ति हो जायेगी और जो जिनेन्द्रदेव को छोड़कर सरागी देवों की आराधना करने में प्रवृत्त है उसे ऐसा अवसर प्राप्त करने के लिए सरागी देवों को छोड़कर जिनेन्द्र भगवान् की शरण में ही आना होगा। **धनञ्जय कवि** ने **विषापहार स्तोत्र** में लिखा है –

अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्
तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति।
हरिन्मणिं काचधिया दधानः,
तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः॥२७॥

जिस प्रकार नीलमणि को काँच समझकर भी यदि कोई धारण करता है तो वह धनाढ्य है, क्योंकि जिस दिन उसको नीलमणि की महिमा समझ में आ जायेगी, उसके पास धन ही धन हो जायेगा। उसी प्रकार हे भगवन् ! जो आपका स्वरूप नहीं जानकर भी आपको पूजता है तो भी उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ ही है जो अन्य देवों को सच्चा देव समझकर पूजता है, क्योंकि जिस दिन उसको आपका स्वरूप समझ में आ जावेगा वह सच्चा उपासक, सच्चे देव का आराधक बन ही जायेगा।

इसका अर्थ यह नहीं है कि हम वीतरागी देव को भी काँच के समान

सरागी समझकर, कुछ देने-लेने वाला मानकर पूजें। इस प्रकार सरागी समझकर पूजने से हमारे लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो सकती । अहो, हमें इतनी उत्तम मनुष्य पर्याय, उसमें भी उत्तम कुल, सकलेन्द्रियता, जिनेन्द्रदेव के चरणों का सान्निध्य प्राप्त हो गया तो भी हमने उनका मूल्य नहीं समझा, हमने उनका स्वरूप नहीं समझा, हम थोड़ा गहराई से सोचें, हमने अपने आपके साथ कितना बड़ा धोखा कर दिया। अगर हम इस अपूर्व मनुष्य पर्याय में भी सच्चे देव को नहीं समझ पाये तो क्या हम आगे पुनः मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर पायेंगे तथा मनुष्य पर्याय को प्राप्त किये बिना क्या कभी हमारा कल्याण हो सकता है? नहीं, कदापि नहीं।

(१९) प्रश्न - क्या सच्चे देव के दर्शन नहीं मिलने पर (अर्थात् यदि हमें कहीं सच्चे देव-जिनबिम्ब के दर्शन नहीं मिल रहे हैं तब तो) हम सरागी देवों के यहाँ दर्शन-पूजन कर सकते हैं?

उत्तर - नहीं, सच्चे देव के दर्शन नहीं मिलने पर भगवान् के दर्शन किये बिना रह जाना अच्छा है लेकिन सरागी देवों की पूजा करना अच्छा नहीं है। **आचार्य पूज्यपाद स्वामी ईर्यापथ** (अर्हत्) **भक्ति** में भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं-

जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पादपद्मं न लभ्यं,
तच्चेत् स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः।
अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधास्ते,
क्षुद्व्यावृत्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः॥१४॥

हे भगवन् ! यदि किसी जीव को अपने संसारभ्रमण से छूटना है, जन्म का मार्जन, निवारण करना है तो वह आपके चरण-कमलों की सेवा करे। यदि आपके चरण-कमल प्राप्त न हो सकें तो अपनी इच्छानुसार आचरण करे परन्तु कुदेवों की उपासना न करे। भूखा मनुष्य, यहाँ जो सुलभ है उस अन्न को खाता है, यदि अन्न दुर्लभ है तो व्यर्थ ही भूख को दूर करने के लिए कालकूट-विष को कौन भूखा खाता है? कोई नहीं।

कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे-कोई व्यक्ति अपनी क्षुधा वेदना को

मिटाने के लिए अन्न आदि भोज्य सामग्री के नहीं मिलने पर भी कालकूट विष को खाकर अपनी क्षुधा को शान्त नहीं करता है उसी प्रकार संसार-समुद्र से पार होने के लिए जिनेन्द्रदेव की आराधना करे, लेकिन जिनेन्द्र भगवान् (जिनबिम्ब) की बाह्य में प्राप्ति न हो तो कौन ऐसा बुद्धिमान है जो कालकूटविष के सदृश सरागी देवों की आराधना करेगा अर्थात् कोई नहीं करेगा। अत: जहाँ जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन हों तो वहाँ दर्शन-पूजन-भक्ति करे तथा जहाँ जिनबिम्ब के दर्शन न हों वहाँ जिनेन्द्र भगवान् का मन में ही स्मरण करके अपने दैनिक कार्य कर लेना अच्छा है लेकिन मिथ्यात्व की वृद्धि करने वाले, संसार-सागर में डुबोने वाले ऐसे सरागी देवों की आराधना करना अच्छा नहीं है।

(२०) प्रश्न - क्या जिनबिम्ब के नहीं मिलने पर जिनेन्द्र देव की फोटो के सामने भगवान् की पूजा, आरती आदि कर सकते हैं?[१]

उत्तर - नहीं, भगवान् की फोटो पूज्य नहीं होती है क्योंकि उसमें विधिपूर्वक जिनेन्द्र देव की अर्थात् पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करते समय जो संस्कार (मंत्रों के माध्यम से) डालकर स्थापना की जाती है, वह नहीं होती है। प्रतिष्ठा किये बिना, फोटो तो क्या जिनबिम्ब भी पूज्य नहीं होता है। यदि बिना प्रतिष्ठा के भी जिनबिम्ब मान लिया जाय तो प्रतिमा बनाने वाले को कितना पाप लगेगा क्योंकि प्रतिमा की घढ़ाई करते समय उस पर पैर भी रखने पड़ते हैं, टाँची, हथौड़े आदि चलाने ही पड़ते हैं। दूसरी बात यदि फोटो को पूज्य मान लिया जाय तो उसके सामने खाना, पीना, सोना, बैठना नहीं किया जा सकता है। उसका भी, मंदिर में जिस प्रकार हम यद्वा-तद्वा प्रवृत्ति नहीं कर सकते, उसी प्रकार फोटो के सामने भी विनय करना पड़ेगा लेकिन ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि फोटो तो लगभग प्रत्येक घर में लगी रहती है। न्यूज पेपर, पत्रिका, पेन, लॉकिट आदि में भी फोटो लगी रहती है उन सबका विनय कौन करता है? कैसे हो

१. वर्तमान में जो देव, गुरु के विशाल चित्र के सामने विशेष अवसरों पर दीप प्रज्वलन, आरती आदि का कार्यक्रम होता है वह एक अपवाद मार्ग है, उसे हम उत्सर्ग मार्ग नहीं बना सकते हैं। देवदर्शन से अभिप्राय प्रतिष्ठित जिनबिम्ब के दर्शन से ही है क्योंकि जिनबिम्ब ही साक्षात् जिनदेव है।

सकता है? इसलिए फोटो के सामने दीपक जलाना, आरती करना, पूजन आदि उचित कैसे कहा जा सकता है?

(२१) प्रश्न - यदि फोटो पूज्य नहीं है तो कोई उसे फाड़ दे, इधर-उधर पटक दे तो क्या पाप नहीं लगता है?

उत्तर - फोटो पूज्य नहीं होने पर भी उसको देखकर हमें अपने आदर्श जिनेन्द्रदेव, गुरु आदि की याद आती है। उनकी फोटो देखते ही उनका जीवन चरित्र सामने आ जाता है इसलिए हम अपने इष्ट देवता-गुरु आदि की फोटो को घर में आदरपूर्वक उच्च स्थान पर रखते हैं। उनको फाड़ने, जमीन में पटकने जैसी निकृष्ट क्रियायें नहीं करते हैं क्योंकि ऐसा करते समय भी हमारे अन्दर यह अनुभूति होती है कि हमने भगवान् / गुरु का अपमान किया है।

दूसरी बात, जिस प्रकार जिनबिम्ब के खण्डित हो जाने पर विधिपूर्वक उसका विसर्जन होता है ऐसा फोटो के फट जाने पर उसका विसर्जन करने की विधि कहीं नहीं बताई गई है।

इसी प्रकार बाजार में जो पीतल, तांबे, प्लास्टिक आदि की मूर्तियाँ मिलती हैं, वे भी अप्रतिष्ठित होने से पूज्य नहीं होती हैं।

(२२) प्रश्न - बीमारी ठीक होने की अथवा धन आदि की प्राप्ति की आकांक्षा से भगवान् में आस्था रखें, उनकी पूजन करें तो क्या हानि है?

उत्तर - बीमारी ठीक होने की आकांक्षा लेकर हम भगवान् की पूजा करें, माला फेरें, अभिषेक करें, शान्तिधारा आदि धार्मिक अनुष्ठान करें तो हानि तो कुछ नहीं है, क्योंकि हम जिनेन्द्रदेव की शरण में गये हैं लेकिन हमारे अनुष्ठानों से, मान लिया, इतने पुण्य का आस्रव हुआ कि हमारी बीमारी ठीक हो गई परन्तु यदि थोड़े ही दिनों के बाद पुन: दूसरी बीमारी खड़ी हो गई, दूसरी बीमारी लग गई तो फिर से अनुष्ठान करने पड़ेंगे। फिर बीमारी ठीक हो गई और कुछ वर्षों के बाद पुन: नई बीमारियाँ खड़ी हो गईं तो आप क्या करेंगे? क्या आप जिन्दगी भर बीमारियों को ठीक करने के लिए ही अनुष्ठान करते रहेंगे या आप

अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए भी भगवान् की भक्ति करेंगे। हम पहले ही जन्म-जरा-मृत्यु रूपी रोगों को नष्ट करने के लिए भक्ति करें, आस्था रखें तो हमारे ये छोटी-मोटी बीमारियाँ तो हो ही नहीं सकतीं। जब जन्म ही नहीं होगा तो शरीर कहाँ से मिलेगा ? शरीर नहीं हो तो ये बीमारियाँ किसके आश्रय से हो सकती हैं। अत: बार-बार याचना और भक्ति करने की अपेक्षा तो हम एक-बार ही ऐसी भक्ति करें कि हमें परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति हो जावे। ऐसी भक्ति करने पर शारीरिक बीमारियों के नष्ट होने रूप आनुषंगिक फल तो सहज ही मिल जायेगा।

इसी प्रकार यदि आपने धन की माँग रखकर भगवान् की भक्ति की, योग से धन मिल भी गया और कुछ ही दिनों में यदि नष्ट हो गया तो आप क्या करेंगे। यदि आपने पुत्र की याचना की, पुत्र प्राप्त हो भी गया लेकिन थोड़ा ही बड़ा होकर मर गया तो आप क्या करेंगे? इन सांसारिक कामनाओं की अपेक्षा हम भगवान् की भक्ति के फल में अनन्त-चतुष्टय रूप 'जिनगुण सम्पत्ति' ही क्यों न माँगें, मुक्तिवधू को ही क्यों न माँगें, आत्मा में स्थित अनन्त गुणात्मक वैभव को ही क्यों न माँगें? पुत्र से चलने वाली कुल परम्परा की अपेक्षा हम स्वयं भगवान् महावीरस्वामी के समान अजर-अमर हो जावें। कितना अच्छा हो कि हम एक बार भी निकांक्ष अर्थात् लौकिक पदार्थों की इच्छा छोड़कर भक्ति कर लें तो निश्चित रूप से हमारी भक्ति सफल हो सकती है, सफल हो जायेगी। हम संसार के दु:खों से छूटकर अनन्त सुखों को प्राप्त कर सकेंगे।

(२३) प्रश्न - क्या भगवान् में इतनी भी शक्ति नहीं है कि वे अपने सामने रखे हुए फल, चावल आदि खाते हुए छोटे-छोटे जीवों को भगा पावें अथवा आजकल तो लोग भगवान् को ही उठा ले जाते हैं। कुँए में पटक देते हैं तो भी भगवान् चोर-पापी को कुछ नहीं कहते। वे अपनी ही रक्षा नहीं कर पाते हैं तो हमारी रक्षा कैसे करेंगे?

उत्तर - हमारे भगवान् स्वयं के बिम्ब को उठाकर ले जाने वालों को अथवा हथौड़े आदि से खण्डित करने वालों को, कुँए में पटक देने वालों को भी कुछ नहीं कहते, उनका कुछ भी बुरा नहीं करते। इसीलिए तो वे भगवान् हैं। जो अपना बुरा करने वालों का बुरा करें और अच्छा करने वालों का अच्छा

करें, शाप दें, अनुग्रह करें वे तो संसारी कहलाते हैं, वे तो रागी द्वेषी होते हैं, वे वीतरागी देव कैसे हो सकते हैं। कोई यह भी नहीं सोचे कि मंदिर में विराजमान जिनबिम्ब तो निर्जीव हैं, वे कैसे चूहे, कबूतर आदि को भगायेंगे? ऐसी भी कोई बात नहीं है। हमारे गुरुराज जो अभी भगवान् नहीं बने हैं वे भी अपने ऊपर उपसर्ग करने वालों का प्रतिकार नहीं करते। भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी को हाथी की पर्याय में कुक्कुट सर्प ने डस लिया, मुनि बने थे तब अजगर ने निगल लिया, तब भी उन्होंने प्रतिकार नहीं किया, तभी तो वे भगवान् बन पाये। इसलिए ऐसी कल्पना नहीं करनी चाहिए कि भगवान् बलहीन हैं, स्वयं के सामने रखे हुए फल-चावल आदि खाने वाले छोटे-छोटे जीवों तक को नहीं भगा पाते हैं। आप सोचें, किसी के गाली-गलौच करने पर, डण्डे आदि से मारने पर भी उसको कुछ नहीं कहना तथा उसके अर्थात् गाली-गलौच के बारे में, मार-पीट के बारे में और गाली देने वाले, मारने वाले के बारे में कुछ नहीं सोचना, कुछ भी विचार उत्पन्न नहीं होना अथवा उन सबको मात्र द्रष्टा बनकर देखते रहने के लिए कितनी आत्मिक शक्ति अपेक्षित है, निर्विकल्प बने रहने के लिए कितने आत्मबल की आवश्यकता है। शत्रु का प्रतिकार करने की क्षमता होते हुए भी उसका प्रतिकार नहीं करना क्या सामान्य व्यक्ति के बस की बात है? शत्रु-मित्र में ज्ञाता-द्रष्टा बने रहना कितना कठिन काम है! राग-द्वेष नहीं करना, सम भाव बनाये रखना ही तो सच्चे देव का अनिवार्य लक्षण है।

(२४) प्रश्न - यदि भगवान् सम भाव वाले हैं, किसी का अनुग्रह-निग्रह नहीं करते हैं तो हमारी रक्षा कैसे करेंगे? संसार में उन्हें ही शरण क्यों माना गया है?

उत्तर - यह सच है कि भगवान् अनुग्रह-निग्रह नहीं करते फिर भी उनकी शरण में जाने वाला स्वयं अपने आप सुरक्षित हो जाता है।

मैं जानत तुम अष्ट कर्म हरि शिव गये,
आवागमन विमुक्त रागवर्जित भये।
पर तथापि मेरो मनोरथ पूरत सही,
नय प्रमानतैं जानि महा साता लही॥ (अभिषेक पाठ)

आचार्य समन्तभद्र स्वामी[१] वासुपूज्य भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं- हे भगवन् ! आपको पूजा करने वाले से कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि आप वीतरागी हैं और न ही आपको अपनी निन्दा से ही कोई मतलब है क्योंकि आप वैर-द्वेष परिणाम से रहित हैं फिर भी आपके पवित्र गुणों का स्मरण ही हमारे चित्त को पाप रूपी अञ्जन से बचा लेता है अर्थात् आपके गुणों का स्मरण मात्र ही हमारे पापों का नाश कर देता है, हमें पापों से बचा लेता है। कहने का अभिप्राय यह है कि भगवान् की पूजा करने वाले, भगवान् की शरण में जाने वाले को इतने पुण्य का आस्रव होता है कि वह सांसारिक दु:खों से सहज ही बच जाता है।

(२५) प्रश्न - तो क्या हमें पुण्य प्राप्त करने के लिए भगवान् के दर्शन-पूजन करने चाहिए ?

उत्तर - आस्थापूर्वक भगवान् के दर्शन करने वालों को तो मोक्ष की प्राप्ति होती है तो क्या उसको पुण्य की प्राप्ति नहीं होगी ? अरे ! हार खरीदने वाले को क्या डिब्बा नहीं मिलेगा? क्या उसे डिब्बा माँगना पड़ेगा? क्या आम खाने वाले को गुठली अलग से माँगनी पड़ेगी? नहीं, ये चीजें तो सहज ही मिल जाती हैं उसी प्रकार भगवान् के सच्चे भक्त को पुण्य, भोग-उपभोग की सामग्रियाँ, पंचेन्द्रिय को प्रसन्न करने वाली वस्तुएँ तो आम की गुठली के समान सहज ही मिल जाती हैं। हम लोग साधु हैं, हमारे कृतिकर्मों में कायोत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा करने के पहले भगवान् से प्रार्थना की जाती है कि हे भगवन्! मैं **'सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं'** अर्थात् सम्पूर्ण अतिचारों की विशुद्धि के लिए, **'कृतदोषनिराकरणार्थं'** मेरे द्वारा किये गये दोषों का निराकरण करने के लिए तथा **'सकलकर्मक्षयार्थं'** सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करने के लिए मैं स्वाध्याय, देववन्दना, प्रतिक्रमणादि आवश्यक कृतिकर्म करने के लिए कायोत्सर्ग करता हूँ। तथा प्रत्येक कृतिकर्म की समाप्ति में भगवान् से याचना, प्रार्थना की जाती है

१. न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्न: पुनाति चित्तं दुरितांजनेभ्य:॥
– बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र

कि **'दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं'** अर्थात् हे भगवन् ! हमारे दु:खों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि (रत्नत्रय) की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्र भगवान् के (समान) गुणों की सम्पत्ति प्राप्त हो।

आगम में सहस्रों स्थानों पर जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति की महिमा बताई है। सर्वत्र यही बताया है कि भगवान् की भक्ति करने से करोड़ों जन्मों के अर्जित पाप नष्ट हो जाते हैं,[१] अनादि से चली आ रही संसार रूपी घनी, मोटी बेल छिन्न-भिन्न हो जाती है। हे भगवन् ! आपके दर्शन से मेरा मोहान्धकार नष्ट हो गया, मेरा कर्मों का महान् बन्ध समाप्त हो गया है, मेरा दुर्गति का निवारण हो चुका है। हे प्रभो ! मेरा मिथ्यात्व रूपी अन्धकार नष्ट होकर ज्ञान रूपी सूर्य उदित हो गया है, आदि-आदि फलों को देखने पर भी लगता है कि हमें भगवान् की भक्ति के फल में पुण्य, सुख-सामग्री माँगने की आवश्यकता ही नहीं है। **धनञ्जय कवि** ने **विषापहार स्तोत्र** में तो यहाँ तक कह दिया कि हे भगवन्!

इति स्तुतिं देव ! विधाय, दैन्याद्
वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयत: स्वत: स्यात्
कश्छायया याचितयात्मलाभ:॥३८॥

हे देव ! मैं आपकी इस प्रकार स्तुति करके दीनता पूर्वक कुछ माँगना नहीं चाहता क्योंकि आप तो उपेक्षक अर्थात् माध्यस्थ भाव वाले हैं। हे देव! वृक्ष के नीचे जाकर बैठने वाले को वृक्ष के सामने छाया की याचना करने से क्या लाभ? छाया तो उसे सहज रूप से मिल ही जाती है। उपर्युक्त दृष्टान्तों को देखकर आप और हम स्वयं सोचें कि वास्तव में हमें भगवान् की भक्ति, दर्शन, आस्था-श्रद्धा किस उद्देश्य से करनी चाहिए।

(२६) प्रश्न - जिन भगवान् को सबस ज्यादा लोग मानते हैं उन्हें सच्चा देव मानें तो क्या हानि है ?

१. भत्तीए जिणवराणं खीयदि जं पुव्वसंचियं कम्मं।

उत्तर - जिन भगवान् को सबसे ज्यादा लोग मानते हों उन्हें सच्चा देव मानने वाला स्वयं सोचे कि क्या भगवत्ता पराश्रित है? या आत्मिक गुणों के चरम विकास की देन है-आत्मा ही परमात्मा होती है, फिर चाहे कोई उसे भगवान् माने या न माने। बहुमत से अर्थात् मानने वालों की अधिकता के कारण कोई भगवान् अच्छे-सच्चे और बड़े नहीं हो जाते। जो गुणवान, बुद्धिमान, परोपकारी, सदाशयी और सक्षम है, संसार में भी वही बड़ा माना जाता है। यदि हजारों लोग भी जहर को मीठा कहें, जीवनदायिनी शक्ति वाला कहें तो क्या जहर मीठा हो जायेगा, जीवन देने वाला हो जायेगा; नहीं, वह तो कड़वा ही था, कड़वा ही रहेगा और जीवन हरण करने वाला ही रहेगा। सच्चे देव तो वही होंगे जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होंगे। चाहे उन्हें बहुत से लोग पूजें अथवा एक व्यक्ति भी नहीं पूजे, वे सच्चे ही रहेंगे। और जो सच्चे देव होंगे वे ही हमारे पूज्य-आराध्य होंगे। चाहे उनके उपासक कम हों या कल्पकाल के अन्त में एक भी नहीं बचे तो भी सच्चे देव तो वीतरागी ही होंगे। पूर्वोक्त लक्षणों वाले ही सच्चे देव होते हैं।

(२७) प्रश्न - क्या जो करोड़ों वर्षों के बाद मोक्ष से आकर अवतार लेते हैं वे सच्चे देव हैं ?

उत्तर - नहीं, भगवान् कभी अवतार नहीं लेते, भगवान् का कभी संसार में अवतरण नहीं होता। संसार में रहकर एक आत्मा ही रत्नत्रय की आराधना करके कर्मों का नाश करके परमात्मा बनती है। संसार में अवतार अर्थात् जन्म लेने के लिए कर्मों के उदय की आवश्यकता होती है यानी कर्मोदय के बिना जीव संसार में जन्म नहीं ले सकता। मोक्ष में स्थित जीवों के तो कर्म का अस्तित्व ही शेष नहीं है तो वे संसार में जन्म क्यों लेंगे? संसार में लौटने का कोई कारण ही नहीं है तो मुक्तात्मा संसार में क्यों अवतरित होंगे? कदापि नहीं। क्या जलकर राख बनने के बाद भी कोई बीज अंकुरित हो सकता है? क्या सोलह तावों को सहनकर शुद्ध हुए सोने में भी कभी किट्टकालिमा लग सकती है? उसी प्रकार जिन्होंने संसार की वृद्धि के कारणभूत कर्म रूपी बीजों को ध्यान रूपी अग्नि

से जलाकर भस्मीभूत कर दिया है वे पुन: संसार में जन्म कैसे लेंगे? **आ. समन्तभद्रस्वामी** ने **रत्नकरण्डक-श्रावकाचार** में समाधि के फल का वर्णन करते हुए कहा है-

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटु: ॥५/१२॥

सैकड़ों कल्प कालों (२०कोड़ाकोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है) के बराबर काल के बीत जाने पर भी मोक्ष को प्राप्त जीवों में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होगा। चाहे तीन लोक में भ्रान्ति को उत्पन्न करने वाला उत्पात भी क्यों न हो जावे अर्थात् तीन लोक को भ्रमित करने वाले उत्पात के हो जाने पर भी मोक्ष में विराजमान सिद्ध भगवान् वहाँ से च्युत नहीं होंगे।

अत: सत्य तो यह है कि कोई भगवान्/परमात्मा अवतार नहीं लेता है। जो लोग अवतार लेना मानते हैं वे उपर्युक्त कथन को पढ़कर स्वयं सोचें कि क्या भगवान् भी अवतार ले सकते हैं? नहीं, जो अवतार लेते हैं वे भी सच्चे देव नहीं हो सकते हैं।

(२८) प्रश्न - भगवान् चाहे सच्चे हों या झूठे, अपने लिए तो सभी भगवान् बड़े हैं?

उत्तर - नहीं, ऐसा नहीं कहना चाहिए। ऐसा कहने वालों को पहले यह सोचना चाहिए कि अपने से बड़े अथवा अपने लिए तो बड़े किस अर्थ में हैं? पत्नी रखने वाले भगवान् आपसे बड़े किस अपेक्षा हैं? वस्त्राभूषण पहनने वाले भगवान् आपसे किस अपेक्षा बड़े हैं? क्या इसलिए कि आप इतने वस्त्राभूषण नहीं रखते जितने उनके पास हैं या वे रखते हैं। क्या वे आपसे इसलिए बड़े हैं कि लोग उन्हें भगवान् मानते हैं अथवा कई लोग उन्हें नाना प्रकार की भेंट सामग्री चढ़ाते हैं। यदि ऐसा है तो एक ऑफीसर-मिनिस्टर भी हजारों व्यक्तियों के लिए तो भगवान् ही होता है, लोग अपने ऑफीसर को इतनी ही भेंट समर्पित करते हैं। यदि आप उन्हें इसलिए भगवान् (बड़ा) मानें कि वे कई लोगों की इच्छा पूर्ति करते हैं तो किसी सेठ-साहूकार अथवा किसी नेता के आस-पास

रहने पर भी, उससे मित्रता रखने पर भी काफी लोगों की बड़ी-बड़ी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं, बड़े-बड़े कार्य सिद्ध हो जाते हैं अथवा वे सेठ-नेता आदि भी उनके कार्य को सिद्ध कर देते हैं, जेल में जाने से बचा लेते हैं, मौत की सजा नहीं होने देते हैं तो फिर ऐसे भगवान् हम संसारी जीवों से बड़े कैसे हुए? थोड़ी गम्भीरता से सोचें, आखिर आप जिसको अपना आदर्श बनाना चाहते हैं अथवा जिसको आप अपना भगवान् मानते हैं, अपने से बड़ा मानते हैं, वह आपसे बड़ा कैसे है? यदि आपको बड़ा नहीं लगे तो आप यह धारणा समाप्त कर दें कि चाहे सच्चे हों या झूठे अपने लिए तो बड़े हैं। हमें सच्चे देव के प्रति श्रद्धा रखकर अपना कल्याण करना चाहिए।

(२९) प्रश्न - भगवान् की भक्ति से अभी तो मोक्ष मिलना है नहीं और लौकिक वस्तुएँ माँगने के लिए आपने मना कर दिया तो फिर भक्ति करने से लाभ ही क्या है?

उत्तर - भगवान् की भक्ति से अभी मोक्ष नहीं मिलता है, यह ठीक है पर कभी तो मोक्ष अवश्य मिलता है अर्थात् भगवान् की भक्ति परम्परा से मोक्ष देने वाली है। जहाँ तक भक्ति के फल में लौकिक वस्तुएँ माँगने की बात है, माँगना तो कहीं पर भी अच्छा नहीं माना गया है। कहा भी है-

माँगन मरन समान है, मत कोइ माँगो भीख।
माँगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥

हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि यदि हम भगवान् के सामने कुछ नहीं माँगेंगे तो हमें कुछ भी फल नहीं मिलेगा। सीता ने भगवान् से यह प्रार्थना नहीं की थी कि हे भगवन् ! मैं आपकी भक्ति कर रही हूँ उसके फल में यह अग्नि का कुण्ड पानी बन जाय। धनञ्जय कवि ने भगवान् से यह नहीं कहा कि भगवन्! मैं आपकी पूजन कर रहा हूँ इसके फलस्वरूप मेरे बेटे का विष उतर जाय। द्रौपदी ने भगवान् से अपना चीर बढ़ाने की याचना नहीं की थी। सेठ सुदर्शन ने शूली से सिंहासन की माँग नहीं की थी; फिर भी सीता का अग्निकुण्ड जलकुण्ड हो गया, द्रौपदी का चीर बढ़ गया, सुदर्शन सेठ की शूली का सिंहासन बन गया। भगवान् ने अग्नि का पानी नहीं किया, अपितु सीता ने भगवान् की जो

भक्ति की उससे सीता के पापों का क्षय हुआ। पापों का क्षय होते ही यदि अग्नि का पानी हो गया तो कोई आश्चर्य वाली बात नहीं है। इसलिए नहीं माँगने पर भी भगवान् की भक्ति करने पर बहुत कुछ मिल जाता है। हम तो भगवान् की भक्ति मात्र कर्मों के क्षय का लक्ष्य बनाकर करें, हमारा कल्याण अवश्य होगा।

(३०) प्रश्न - हमें कई बार अपने मित्रों के साथ अथवा कुछ विशेष चीजें देखने के लिए सरागी देवों के यहाँ जाना पड़ता है। वहाँ हम सच्चे देव का स्मरण करके अर्थात् सरागी देव में ही सच्चे देव की कल्पना करके नमस्कार कर लें तो क्या हानि है ?

उत्तर - मित्रों के साथ अथवा विशेष चीजें देखने के लिए सरागी देवों के मंदिर में जाना पड़ता है, यह एक बहाना है। मित्रों के साथ मित्रता निभाना, व्यवहार निभाना यह एक अलग बात है और धर्माचरण एक अलग बात है। **प्रश्नोत्तर रत्नमालिका** में कहा है कि सच्चा मित्र वही है जो हमें पापों से बचाये। मित्र के साथ पर्यटन स्थलों पर जाना, व्यवहार निभाने के लिए उसके यहाँ शादी, बर्थ डे, मृत्यु आदि के अवसरों पर जाने में कोई बाधा नहीं है। लेकिन धर्म स्थानों पर जाना तो सरागी देवों की आराधना का कारण बन ही जाता है। क्योंकि हमारा मन स्थिर नहीं है। हमारे साथ अनंतकाल से मिथ्यात्व के अर्थात् सरागी देवों को पूजने, आराधना करने के संस्कार चले आ रहे हैं। उन सरागी देवों के यहाँ जाने से उन्हें देखकर हमारे मिथ्यात्व के संस्कार जागृत हो सकते हैं। साधु वर्ग जो सम्यग्दृष्टि होता है, संयमी अर्थात् मन और इन्द्रियों को नियंत्रण में रखने वाला होता है उन्हें भी सरागी देवों के सामने बैठकर सामायिकादि धार्मिक अनुष्ठान करने का निषेध किया है क्योंकि ऐसा करने से मिथ्यात्व के संस्कार उत्पन्न हो सकते हैं। दूसरी बात आपको सरागी देवों के सामने हाथ जोड़ते, नमस्कार करते देखकर आपके परिजन, मित्र अथवा अन्य लोग भी सरागी देवों के आराधक बन सकते हैं, क्योंकि वे आपको धर्मात्मा एवं विवेकशील समझते हैं। उन्हें क्या पता कि आपने णमोकार मंत्र पढ़कर अथवा उन्हीं में सच्चे देव की कल्पना करके/सच्चे देव का स्मरण करके उनके हाथ

जोड़े हैं, उनकी पूजा की है। उनको तो यही पता है कि आपने सरागी देवों के हाथ जोड़े हैं, आप जिनेन्द्र भगवान् के समान ही सरागी देवों की भी आराधना करते हैं। कई बार सुना है कि अमुक अंकल जो रोज पूजा करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, साधुओं को आहार देते हैं वे भी जब रात्रि में भोजन कर रहे थे तो हमने भी रात्रि में खा लिया, जबकि उन अंकल के रात्रि भोजन का त्याग था। वे अन्य मित्रों के साथ बैठकर अर्थात् सभी मित्र भोजन कर रहे थे और वे फल ही खा रहे थे लेकिन रात्रि में भोजन करने वालों के साथ बैठकर खा रहे थे इसलिए देखने वालों ने उन्हें रात्रि भोजन करने वाला समझकर रात्रि में भोजन कर लिया। इसलिए जब कोई मुझे कहता है कि विशेष परिस्थिति में बाहर रात्रिभोजन की छूट है तो मैं कहती हूँ नहीं, किसी विशेष परिस्थिति में भले ही तुम घर में रात्रिभोजन की छूट रख लो लेकिन घर से बाहर तो कभी रात्रि में भोजन मत करना, क्योंकि तुम्हें देखकर कई लोग रात्रि-भोजन करना सीख जायेंगे। इसी प्रकार आपको देखकर अनेक लोग सरागी देवों की उपासना में संलग्न हो सकते हैं।

सरागी देवों की प्रतिमा, मंदिर आदि को अच्छा मानना, उनकी प्रशंसा करना भी सम्यक्त्व में दोष लगाता है। सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा ऐसी होती है कि उसे सच्चे देव से बढ़कर और कोई सुन्दर, मनमोहक, आकर्षक नहीं दिखता है। न कोई अन्य प्रतिमा और न कोई अन्य देव, मंदिर ही उसे संतोष दे पाता है। **भक्तामर स्तोत्र** में कहा है-

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ॥११॥

''हमारे मित्र भी जब हमारे मंदिर में आते हैं तो हमारे भगवान् को नमस्कार करते हैं इसलिए हम भी जब उनके साथ उनके मंदिर में जाते हैं तो उनके देवों को नमस्कार करते हैं। यह तो आपसी व्यवहार है।'' इस प्रकार भी नहीं सोचना चाहिए क्योंकि आपके मित्र ने सच्चे देव को नमस्कार कर लिया तो उसे कोई हानि नहीं होगी क्योंकि यदि कोई व्यक्ति अनजाने में भी अमृत पीता है तो उसको मीठा स्वाद ही आता है, उसको अमरत्व की प्राप्ति ही होती है लेकिन यदि

कोई व्यक्ति जाने या अनजाने में भी जहर पीता है तो उसका मुँह कड़वा ही होता है, उसको जहर खाने के फल से होने वाला मरण ही प्राप्त होता है। उसी प्रकार आपने सरागी देवों को नमस्कार किया तो आपको मिथ्यात्व का ही दोष लगेगा और आपके मित्र ने सच्चे देव को नमस्कार किया तो उसके पापों का क्षय अवश्य होगा, भले ही उसने बिना इच्छा के नमस्कार किया हो। अब आप स्वयं सोचें कि मित्रादि के साथ भी सरागी देवों को नमस्कार करना उचित है या अनुचित?

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने **रत्नकरण्डक-श्रावकाचार** में कहा है-

भयाशास्नेहलोभाच्च, कुदेवागमलिङ्गिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव, न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥३०॥

सच्चे देव का उपासक सम्यग्दृष्टि भय से, आशा से, स्नेह से अथवा लोभ के वशीभूत होकर भी कुदेव, कुगुरु तथा कुशास्त्र को प्रणाम तथा विनय भी नहीं करे।

आचार्य समन्तभद्रस्वामी अपने शरीर में उत्पन्न हुए भस्मक रोग का शमन करने के लिए सरागी देवों के मंदिर में गये अथवा उन्हें वहाँ जाना पड़ा। फिर भी उन्होंने कभी उनमें (सरागी देवों में) सच्चे देव की कल्पना करके नमस्कार नहीं किया। उसी का फल था कि उनका इतना बड़ा दुःसाध्य रोग भी बिना किसी औषधि के ठीक हो गया। जब उन्होंने दीर्घ काल तक सरागी देवों के मंदिर में रहकर भी न उन्हें नमस्कार किया और न उनमें सच्चे देव की कल्पना ही की, फिर हम तो वहाँ जाते ही नहीं हैं और कदाचित् योगवशात् पाँच-सात मिनट के लिए जाना भी पड़े तो उनमें सच्चे देव की कल्पना करने की कहाँ आवश्यकता है?

(३१) प्रश्न - क्या जो सृष्टि की रचना करते हैं वे सच्चे देव हैं?

उत्तर - नहीं, लोक में जो कहा जाता है कि ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना की, विष्णु सृष्टि का पालन-पोषण करते हैं तथा शंकरजी संहार करते हैं, यह सब मात्र कल्पना है। यदि भगवान् ही सृष्टि की रचना करते हैं तो किसी को

सुखी और किसी को दु:खी, किसी को निर्धन और किसी को धनाढ्य, किसी को सुन्दर और किसी को कुरूप क्यों बनाते हैं? भगवान् होकर भी निर्दयता पूर्वक किसी को जीवन भर क्यों रोगों से पीड़ित रखते हैं? क्यों माँ की गोद से लाड़ले-प्यारे बेटे को छीन लेते हैं? क्यों नवयौवना के पति को मौत की गोद में सुलाकर उसकी माँग का सिंदूर पोंछ लेते हैं? उसे जीवन भर रोने के लिए मजबूर कर देते हैं। क्यों शराबी, मांसाहारी, व्यसनी/पापी लोगों के घर में भी लक्ष्मी बरसाते रहते हैं? क्यों धर्मात्मा लोगों के घर में भी दरिद्रता का साम्राज्य स्थापित कर देते हैं? क्यों किसी को पशु बना देते हैं? क्यों किसी बेचारे जीव को श्वभ्र सागर में पटककर असंख्य वर्षों तक दु:ख के सागर में डुबोये रखते हैं ?

क्या उनमें इतना भी विवेक नहीं है कि किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, किसको सुख देना चाहिए और किसको दु:ख? विष्णु यदि सृष्टि का पालन-पोषण करते हैं तो वे सृष्टि के पिता कहलाये। पिता होकर भी क्या वे अपनी संतानों की रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं? प्रतिदिन-प्रतिपल हजारों-लाखों लोग मरते हुए देखे जाते हैं। जब शंकर ने सृष्टि का संहार किया तब संसार में दिखने वाले अनन्त जीवों को मारकर जिन पापों का बन्ध किया क्या शंकर को उसका कुछ भी फल नहीं मिलेगा? आदि-आदि अनेक प्रश्नों के साथ-साथ ब्रह्मा को सृष्टि की रचना करने वाला मानने पर एक प्रश्न और उठता है कि ब्रह्मा ने सृष्टि को बनाया है तो ब्रह्मा (ईश्वर) को किसने बनाया? इन सब प्रश्नों का हमारे पास क्या समाधान है? हम इन सब प्रश्नों का क्या उत्तर देंगे? हमारे पास इन प्रश्नों के कोई उत्तर नहीं हैं। इन सभी प्रश्नों का एक ही वाक्य में हमारे पूर्वाचार्यों ने समाधान किया है और वही हमें अनुभव में भी आता है कि यह संसार अनादिनिधन है अर्थात् इस संसार को कभी किसी ने बनाया नहीं है। इसका कहीं कोई प्रारम्भ नहीं है और न ही इसका कहीं अन्त ही है। जैसे कोई पूछे कि बीज पहले था या वृक्ष? इसका उत्तर आज तक न कोई दे पाया है और न भविष्य में कोई दे पायेगा, क्योंकि वृक्ष के बिना बीज उत्पन्न नहीं होता और बीज के बिना वृक्ष उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार इस जीव को और जीवों से भरे संसार को न किसी ने बनाया है और न कोई इसे नष्ट करने में समर्थ

है। यह संसार स्वाभाविक है, सहज है। जैसे अग्नि में उष्णता कहाँ से आयी, कहीं से नहीं, उष्णता उसका स्वभाव है। उसमें हाथ डालने पर वह बालक हो या वृद्ध, अमीर हो या गरीब, भारत में हो या अमेरिका में सभी जगह जलाने का काम करती ही है। उसी प्रकार यह जीव भी यदि पाप कर्म करता है तो उसे दु:ख ही मिलता है चाहे वह गरीब करे या अमीर, धर्मात्मा करे या पापी, चोर करे या साहूकार, रात में करे या दिन में, छुप करके करे या सबके सामने, मजबूरी से करे या मन से, धर्म समझकर करे या पाप समझकर, हेय दृष्टि से करे या उपादेय दृष्टि से सबको दुख रूप फल ही मिलता है और जो पुण्य करता है उसे सुख रूप फल मिलता है तथा जो निज शुद्ध स्वरूप में लीन होता है उसको मोक्ष रूप फल प्राप्त होता है। बस, यही संसार है, यही संसारी जीव है तथा यही सृष्टि है। ऐसे संसार को रचने में कौन समर्थ हो सकता है? अत: यह सिद्ध है कि सृष्टि की रचना न किसी ने की है, न कोई कर ही सकता है तो फिर सृष्टि की रचना करने वाले को सच्चा देव मानने की कल्पनाएँ ही समाप्त हो जाती हैं, इसलिए सृष्टि की रचना करने वाला सच्चा देव है, ऐसा मानना मिथ्या है।

इस प्रकार इकतीस प्रश्नों के द्वारा कौन-कौन सच्चे देव नहीं हो सकते हैं इसका समाधान करते हुए सच्चे देव का स्वरूप कहा गया है। इसको पढ़कर सभी जिज्ञासु सच्चे देव का स्वरूप समझें, सच्चे देव को मानकर भी जो भ्रान्तियाँ हैं उनका निवारण करें तथा सच्चे देव का श्रद्धान करके सम्यग्दर्शन रूपी रत्न को प्राप्त करें, यही प्रस्तुत लेखन का प्रयोजन है।